R.N.I.No.-CHHHIN16015/2014/59925 ISSN 2456-2130 Bastar Paati

सुदूर आदिवासी क्षेत्र की लोक संस्कृति एवं आधुनिक साहित्य को समर्पित त्रैमासिक

संपादकीय कार्यालयः–

'बस्तर पाति'

सन्मति इलेक्ट्रीकल्स, सन्मति गली, दुर्गा चौक के पास,
जगदलपुर, जिला–बस्तर, छ.ग. पिन–494001

मो.–09425507942 ईमेल–paati.bastar@gmail.com

बस्तर पाति

जल्दी ही इंटरनेट पर–www.paati.bastar.com

•मूल्य पच्चीस रूपये मात्र•

अंक–20+21+22+23+24 मार्च 19 – मई 20

प्रकाशक एवं संपादक
सनत कुमार जैन
सह संपादक
श्रीमती उषा अग्रवाल 'पारस'
महेन्द्र कुमार जैन
शब्दांकन
सनत जैन
मुख पृष्ठ
श्री नरसिंह महांती

सहयोग राशि–साधारण अंकः पच्चीस रूपये एकवर्षीयः एक सौ रूपये मात्र, पंचवर्षीयः पांच सौ रूपये मात्र, संस्थाओं एवं ग्रंथालयों के लिएः एक हजार रूपये मात्र। सारे भुगतान मनीआर्डर व ड्राफ्ट ***सनत कुमार जैन*** के नाम पर संपादकीय कार्यालय के पते पर भेजें या स्टेट बैंक ऑफ इंडिया के खाता क्रमांक **10456297588** में भी बैंक कमीशन 50 रूपये जोड़कर सीधे जमा कर सकते हैं। **अन्य किसी को भी सहयोग राशि न देवें।**

सभी रचनाकारों से विनम्र अनुरोध है कि वे अपनी रचनाएं कृतिदेव 14 नंबर फोण्ट में एवं एक्सेल, वर्ड या पेजमेकर में ईमेल से ही भेजने का कष्ट करें जिससे हमारे और आपके समय एवं पैसों की बचत हो। रचना में अपनी फोटो, पूरा पता, मोबाइल नंबर एवं ईमेल आईडी अवश्य लिखें। के प्रत्येक पेज में नाम एवं पता भी लिखें।

पत्रिका में प्रकाशित रचनाओं के विचारों से बस्तर पाति, संपादक मंडल या संपादक का सहमत होना अनिवार्य नहीं है। रचनाकारों द्वारा मौलिकता संबंधी लिखित/मौखिक वचन दिया गया है। संपादन एवं संचालन पूर्णतया अवैतनिक और अव्यवसायिक। समस्त विवाद जगदलपुर न्यायालय के अंतर्गत।

प्रकाशक, मुद्रक, संपादक, स्वामी सनत कुमार जैन द्वारा सन्मति प्रिन्टर्स, सन्मति इलेक्ट्रीकल्स, सन्मति गली, दुर्गा चौक के पास, जगदलपुर से मुद्रित एवं जगदलपुर के लिए प्रकाशित

विवरण

विवरण/1
पाठकों से रूबरू/2
पाठकों की चौपाल–5
बहस/साहित्य के निशाने/6
लघुकथा/अलका पाण्डे/10
लघुकथा/उषा अग्रवाल पारस/10
कहानी/करमजीत कौर/11
लेखकों से निवेदन/12
बस्तर पाति विशेष–सुरेन्द्र रावल
इंटरव्यू/13
कविता/15
व्यंग्य/16
कविता/17
व्यंग्य/18
कविताएं/19–20
समीक्षा/सनत जैन
काव्य/रजनी साहू/22
काव्य/शिवेन्द्र यादव/23
काव्य/दिनेश विश्वकर्मा/24
गज़ल/शैलेन्द्र शर्मा/25
विश्व परिदृश्य/बूढ़ी काकी/प्रेमचंद्र/26
आलेख/बूढ़ी काकी के बहाने/30
आलेख/कौन सा लेखन अफीम है/34
लघुकथाएं/बालकृष्ण गुरू/36
आलेख/बस्तर की प्रथम महिला शासक
बस्तर की प्रथम शिक्षक/ बी.एन.आर. नायडु/37
व्यंग्य/कवि सम्मेलन ऑन हाइवे/डॉ प्रकाश मूर्ति/40
मिट्टी के दीये प्रतियोगिता परिणाम
सुधा वर्मा/शंभु कश्यप/41
राजकुमार पाण्डे/मधु चांडक/खुशबू जामड़े/42
कहानी/मनीष कुमार सिंह/छाया/43
लघुकथाएं/संतोष श्रीवास्तव/45
कहानी/सिर्री/अबीर आनंद/46
लघुकथाएं/मीना गोदरे/महेश राजा/53
कहानी/सैली बलजीत/उसके सपनों का गुम्बद/54
काव्य/संजय वर्मा दृष्टि/56
काव्य/डॉ. कौशलेन्द्र मिश्रा/57
काव्य/सतरूपा मिश्रा/58
नक्कारखाने की तूती/59
श्रद्धांजलि/नरसिंह महांती/60
साहित्यिक उठापटक/61
कविता कैसे बदले तेरा रूप/64
फेसबुक वॉल से/पल्लवी झा रूमा/64

उंगलबाज

''यार! साहित्य में खुद को बड़ा साहित्यकार कैसे साबित करूं ? मैं न तो ढंग की कविताएं लिख पाता हूं न ही मेरे पास दिमाग है। पर मेरी इच्छा है कि खुद को साबित करूं।''

''बस! इतनी सी बात! तुम ऐसी कोई संस्था को पकड़ो जो राष्ट्रीय स्तर की हो और अपनी शाखाएं हर जगह फैलाना चाहती है। उसकी स्थापना करो और सभी को बताओ कि मैं फलानी संस्था का जिला संयोजक हूं, और संस्था का राजकीय सचिव हूं। आज कल थोक भाव से संस्थाएं बन रही हैं। साहित्यकारों की भीड़ में कौन जानता है कि तुम साहित्यकार हो या फिर नौटंकीकार या फिर साहित्य के बहाने रंगीनमिजाजी करने वाले हुनरबाज! है कि नहीं! लोग तो भेड़ की तरह हैं वो तुमको साहित्यकार मान लेंगे। और फिर उन संस्थाओं को भी तो अपनी पहचान जगह जगह बनानी होती है। वो भी खुशी खुशी मान लेंगे। एक बेनर बनाना और कहीं भी चिपका कर कार्यक्रम करवाये बता देना। कभी कभार मलाई टपक जाये तो लपक कर चाट लेना! कौन जांच करने आयेगा तुम क्या हो।''

''....''

''और हां, आजकल सम्मान बांटने का चलन गली गली हो गया है। तुम भी मांग लेना और दो चार को दिला देना। गालिब सम्मान, वीर रस के कवि को दिलवा देना! कौन देखने सुनने वाला है।''

गांव एक सुगंधित हवा

ये सांस ही तो लेनी है इस दुनिया में
फिर क्यों है यूं, भाग–दौड़ इस दुनिया में,
यूं दौड़–भाग कर बची–खुची सांसों को
किसके लिए व्यर्थ गंवायें, कब रूकें, कब समझें।

यूं तो दुनिया में पलायन का एक ही कारण होता है और वो होता है भूख। इस भूख के चलते दुनिया का भूगोल भी बदल जाता है और समाज भी। और तो और संस्कार भी, संस्कृति भी।

सदियों पुरानी मानवीय आदत कही जाये तो गलत न होगा कि भूख के चलते मानव का पलायन होता रहा है। मजबूरी और आदत में जमीन और आसमान का अंतर होता है। लगातार की विपदाओं का सामना करते भटकते हुए आदतन मानव पलायन करने लगता है। जहां रहता है वहां अपने लिए अनुकूलता क्यों नहीं खोजना चाहता है और क्यों नहीं मेहनत करके परिस्थितियों को अनुकूल बनाना चाहता है ? जबकि पलायन करते हुए जहां पहुंचता है वहां उसे अपने जीने, खाने, रहने के लिए मेहनत उतनी करनी होती है जितनी उसे अपनी जन्मभूमि में करनी होती थी। बल्कि कई बार तो मेहनत बहुत कम ही करनी होती है। फिर भी ?

मानव मन की उत्सुकता के चलते उसका पलायन होता है और फिर जहां पहुंचे, वहीं जमने की कोशिश। वास्तव में पलायन के सदियों पुराने कारण के अलावा वर्तमान में पलायन का महत्वपूर्ण कारण है जीवन में पैसा कमाने की शार्ट कट खोज! हर कोई चाहता है कि किस तरह अपने जीवन में जल्दी से जल्दी पैसा कमाये और आगे बढ़े। दूर के ढोल सुहावने होते हैं ये बात बाद में समझ आती है। तब तक तो काफी देर हो जाती है। गलती का अहसास होते ही शर्म, समाज के तिरस्कार की कल्पना वापसी के बचे खुचे रास्ते बंद कर देती हैं। नशे और बुराइयों का साथ भी वापसी पर रोक लगाता है।

बाजारवाद के आकर्षण में आदमी की जिन्दगी भी बिक जाती है। शहरों का आकर्षण, बगैर रोक–टोक के जीवन की चाहना, नौकरी को विशेष सामाजिक मान्यता, खेती और ग्रामीण रोजगार को योजनाबद्ध तरीके से तिरस्कृत बनाया जाना, मेहनत की जगह वाइट कॉलर जॉब की सामाजिक स्थापना में आदमी जाने कब जिन्दगी जीने की जगह अपनी कीमती जिन्दगी को खपाने लगता है उसे पता ही नहीं चलता। उसके मन में स्थापित झूठे अदृश्य मानस्तम्भ उसे जब तब समझाते रहते हैं कि अगर वो रूक गया तो दुनिया उसे धकेल कर गिरा देगी और फिर उसके ही ऊपर से चढकर आगे बढ़ जायेगी।

वास्तव में जिन्दगी है क्या ? सुखों को पाने की चाह में उन्हीं सुखों का उपभोग ही न करके दूसरे दुखों को आमंत्रित कर लेना? आखिरकार मानव की आवश्यकता है क्या ? इस विश्वव्यापी महामारी में करोड़ों लोगों की शहरों से वापसी, उनका अपने घर की लौटना; ऐसा नहीं लगता कि यही मानव जीवन की सच्चाई है ? अगर मरना भी है तो अपने 'देश' अपने 'गांव' अपने 'लोगों' के बीच ही मरना है। जिसके लिए सैकड़ों हजारों किलोमीटर की पैदल यात्रा वो भी अपने बच्चों, अपनी औरतों और बुजुर्गो के साथ। इस एक महामारी ने कितनी आसानी से जीवन का सच समझा दिया हम सबको। अपनी जमीन, अपने लोग, अपनी हवा, अपनों की प्रताड़ना, अपनों के बीच रूखा सूखा खाना ही इस जीवन का सच है। नहीं चाहिए हमें तुम्हारी ये ऊंची ऊंची अट्टालिकाएं, नहीं चाहिए शहरी लकदक उजाले, गांव के सूरज–चांद के उजाले ही हमारे लिए सबकुछ हैं।

शायद इस महामारी ने सबको अपनी अपनी औकात समझा दी है जिन्दगी के झूठे मुखौटे जो हमने खुद ही चेहरों पर लगा रखे थे, उतार फेंकने को मजबूर कर दिया है। मजबूर नहीं किया बल्कि हिम्मत दी है कि हम अपने इन झूठे मानकों को कुचल दें अपने ही पैरों से। अपनी गलती स्वीकार करने की ताकत दी है।

मानव को खुद की ओर मुड़ने का इशारा प्रकृति ने कर दिया है और अपनी ओर से धक्का भी दे दिया है। ये सबक बहुत समय तक अपनी पैठ बना कर रखेगा, ये तो निश्चित बात है। अब शायद उन्हीं बातों की चर्चा होगी जिसे अब तक पिछड़ेपन की निशानी साबित करने में जी जान से सभी लगे थे। अब जीवन का सच साबित करना होगा अगर किसी भी कारण से मौका मिला है तो।

यहां सबके सामने यहीं यक्ष प्रश्न मंडरा रहा है कि इतने सारे लोगों की घर वापसी को पुराने गांव कैसे झेल पायेंगे ? किस तरह से इतने लोगों को रोजगार और जीने का साधन मिलेगा ? किस तरह इनका भार सहन करेगी वह धरती जिसके भरोसे ये सारे लोग वापस आ गये हैं। ये रूकेंगे अपनी जन्मभूमि में, ये तो सौ प्रतिशत सच्ची बात है। समय की मार और सामूहिक वापसी ने उनकी शहरों की ओर न होने वाली वापसी पर मुहर लगा दी है। शहरों का क्या होगा ? वहां की फैक्टरियों का क्या होगा ? ये वक्त बतायेगा, पर इन करोड़ों जानों के बचने और बचे रहने की कोशिश, सामाजिक जिम्मेदारी आन पड़ी है।

वैसे तो जिस तरह शहर किसी को भूखा नहीं मारता तथ्य स्थापित किया गया था जबकि सत्य तो ये है कि गांव आज भी किसी को भूखा नहीं सोने देते हैं। आज गांवों की बदौलत ही इस भयंकर महामारी में भारत आत्मनिर्भर है। गांवों की मेहनत, खेती और खेती से जुड़े उत्पाद जो वास्तव में जिन्दा रहने के लिए आवश्यक हैं, उनकी हद से ज्यादा उपलब्धता वरदान बन गई है। जिस खेती को कपड़े खराब करने वाला बता कर, किसानों को निकृष्ट निगाहों से देखने का चलन बनाकर सामाजिक व्यवस्था बनायी गयी थी वही आज सबसे ऊपर और सम्मानित बनकर सामने आयी है। किसानों का वास्तविक सम्मान लोगो की नजरों में आज दिख रहा है जब शहर को भूख लगी है।

गांव निश्चित रूप से किसी को भूखा मरने नहीं देगा पर इसके लिए कुछ उद्यम तो करना ही होगा। ग्राम रोजगारों को छोड़कर जाने वालों को फिर से उन रोजगारों को जीवंत करना होगा। फिर उस सूखे वृक्ष को पानी, खाद और प्रेम भरी नजरों से देखना होगा। उसे सहलाना होगा प्यार से, प्रकृति की गोद फिर से अपने बच्चों के लिए हरी भरी हो जायेगी।

वर्तमान दौर अजीबोगरीब है एक ओर जहर भी बेचा जाता है और दूसरी ओर उस जहर से बचाने के लिए उपाय भी किये जाते हैं। जैसे कि शराब, कीटनाशक, रासायनिक खाद। जीवन में जहां भी रसायन पहुंचा है वहां नुकसान ही हुआ है चाहे वह दवा के रूप में ही क्यों न हुआ हो। आज इसका जीवंत उदाहरण हमारे सामने है विश्वव्यापी महामारी से बचने में रसायन अभी हारे हुए है और प्राकृतिक उपाय अदरक, गिलोय, हल्दी, जीरा आदि ने महामारी के खिलाफ अपना मोर्चा सम्भाला हुआ है। आज देश में जैविक खाद के उत्पादों का बहुत बड़ा बाजार है। समस्त सक्षम समाज जैविक खाद के उत्पादों को अपनी जीवनचर्या में शामिल कर चुका है। अगर गाय के गोबर की खाद और नीम के पत्तों की दवा से अनाज और सब्जियां उगायी जायें तो इनको बहुत आसानी से बाजार में बेचा जा सकेगा।

इसी प्रकार गाय का शुद्ध दूध और घी का मार्केट है। अगर इसमें शुद्धता है तो मानकर चलिए इसे मुंहमांगे दाम पर बेचा जा सकता है। शहरों में मिलावट का मार्केट है लोग दूध के नाम जाने क्या पीते हैं उनको खुद ही नहीं पता है।

गौपालन एवं कृषि एक दूसरे के पूरक हैं। जैविक खाद की आपूर्ति गाय के माध्यम से होती है दूध घी आदि भी मिलता है। गोबर के कंडों में सूखे पत्ते और टहनी आदि मिलाकर ईंधन की व्यवस्था की जा सकती है। बैलों का प्रयोग करके डायनमों के माध्यम से बिजली पैदाकर बैटरी में एकत्र करके घरों को रोशन किया जा सकता है।

जंगल में पड़े पत्तों को झाड़ कर किसी गढ्ढे में भरकर खाद बनाई जा सकती है जिसे पैकेटबंद करके गमलों के पौधों के लिए बेची जा सकती है।

आज कल फूलों का बहुत बड़ा बाजार है। फूलों की खेती के साथ मधुमक्खी पालन किया जा सकता है। मदरस और फूलों से कमाई होगी। बचे और सड़े फूलों से खाद बनाई जा सकती है। या फिर सड़ने से पहले उनका अर्क निकालने के साथ अगरबत्ती निर्माण किया जा सकता है। अगरबत्ती का मार्केट इस देश में बहुत बड़ा है। बताने वाले तो बताते हैं कि अभी इसमें चिता की राख और अंगारों के चूरे का प्रयोग किया जाता है। क्या शुद्धता का मार्केट आपके आसपास नहीं है ?

वैसे भी गांव अपने आप में एक संपूर्ण इकाई होती है। एक दूसरे को रोजगार देते हुए बंधुत्व बढ़ाती भी है। गांव के नाई, बढ़ई, राजमिस्त्री, गाय चराने वाले, किसान, किराना व्यापारी, गौपालक आदि की चैन एक दूसरे को बांधकर रखती है।

गांव के उत्पाद इतने हैं कि उनको बाजार हाथो हाथ मिल सकता है। महुआ शराब के अलावा कई जगह सुखाकर आटे के रूप में प्रयोग की जाती है। दवा के रूप में उपयोग की जाती है। नीम के पत्तों का अर्क दवा, कीटनाशक, टहनी दातून के रूप में उपयोग की जाती है। दातून के लिए नीम की खेती की जा सकती है।

यज्ञ सामग्री का बाजार कितना बड़ा है इस देश में। इस यज्ञ सामग्री में आम की लकड़ी, गिलोय, छड़िला, बेर, आदि का प्रयोग किया जाता है। क्या इन सामग्रियों की खेती द्वारा औद्योगिक इकाई नहीं बनाई जा सकती है ?

तेल साबुन में उपयोग की जाने वाली नई सुगंधियों और वनस्पतियों का उपयोग कर साबुन के मार्केट पर कब्जा नहीं जमाया जा सकता है ?

शहतूत, तेंदू, रामफल, सीताफल आदि कितने ही फल हैं जिनका आज के समय में व्यवसायिक उत्पादन नहीं हो रहा है जबकि इनकी डिमांड हर शहर में है, पैसे वाले लोग इसे शौक से खाते हैं। ड्रेगन फल आयात किया जाता है जिसने भी खाया होगा जानता होगा कि उसका स्वाद कितना विचित्र है फिर भी शौक से खाते हैं लोग। क्या शहतूत, काजूफल, जैसे फलों को कोई खाना नहीं चाहेगा ?

हमारे बस्तर में एक विशेष तरह का अनाज होता है जिसमें कैलोरी कम होती है और अद्भुत बात है इसे उगाया नहीं जाता बल्कि मरहान में उग जाता है। क्या ऐसे अद्भुत उत्पादों का उत्पादन नहीं किया जा सकता है ?

आज लौंग, काली मिर्च, इलायची केसर आदि का दाम कितना ज्यादा है। अगर इनका उत्पादन व्यवसायिक स्तर पर किया जाये तो इनके दाम भी गिरेंगे और लोगों को रोजगार भी मिलेगा।

पान के पत्तों के साथ उपयोग किया जाना वाला कत्था यानी खैर का पेड़, इसका उत्पादन किया जा सकता है।

गिलोय का जूस, आइसक्रीम, शरबत जैसे नवीन प्रयोग किये जा सकते हैं। गिलोय के और क्या उपयोग हो सकते हैं जो हमारे खान पान में आसानी से सम्मिलित किये जा सकते हैं, इस पर अनंत सम्भावानाएं हैं। खाने के शौकिन भारतीय समाज ने जब पिज्जा, बगैर, ब्रेड जैसे बासी–तिबासी गैस बनाने वाले बगैर स्वाद के भोज्य पदार्थों का स्वागत किया है, हाथों हाथ लिया है तो फिर हमारे भारतीय टेस्ट को कैसे नहीं सर पर बैठायेगा। ये सुनहरा मौका है बल्कि भारतीय संस्कृति की सेवा के साथ भारत को विश्व पटल पर उभारने का। पूरा विश्व आज भारत की ओर अचरज से देख रहा है कि ये भारत के लोग क्या खाते हैं अपने दैनिक जीवन में, जो जान लेने वाली महामारी यहां पर कसमसा कर रह गयी है। ये सोच वर्तमान में कमाने के साथ ही साथ सेवा करने के लिए मौका है।

अदरक, नींबू का अचार, आंवले का मुरब्बा, आम का मुरब्बा, न जाने क्या–क्या खाया जाता है इस देश में।

इन सबके अलावा लकड़ी के उत्पाद, बांस के उत्पाद टोकरी सूप, झाड़ू का प्रयोग लोगों ने इसलिए बंद कर दिया क्योंकि ये सब अब बाजारों में नहीं मिलता है। प्लास्टिक को गले लगाकर रोगों को आमंत्रित कर लिया है।

पत्थरों के उत्पाद सिल और लोढ़ा आज भी बिकते हैं।

जंगल में इतने उत्पाद होते हैं जो अपने आप उग कर अपने ही आप नष्ट हो जाते हैं। उनको कोई उपयोग ही नहीं कर पाता है। जैसे बस्तर के आम, इमली, महुआ, टोरा, तेखूर, पेंग, अगर इनका पूरा का पूरा उपयोग किया जाये तो बगैर किसी की नौकरी करे जीया जा सकता है।

यहां दो बातें मन में आती हैं कि अगर इतने सारे उत्पाद हमारे आसपास ही थे तो गांव के लोग शहर क्यों गये ? दूसरी बात मन में आती है कि ये सब बनाकर बेचा कहां जायेगा ? ये दोनों बातें विचारणीय हैं और महत्वपूर्ण भी हैं।

पहली बात का यह उत्तर कि गांवों से शहर की ओर पलायन होने का कारण क्या है ? पलायन का रोजगार से सीधा संबंध न होकर ये है दिखावा, शहरी आकर्षण और एक बार शहर जाकर तीन–तेरह में उलझ जाना, शहर से वापसी में शर्म महसूस होना। शहर जाकर तीन सौ रूपये कमा लेना और गांव में दो सौ कमा लेना, दोनों में कौन सा सुखकर है ?

शहर जाकर असुविधा में रहना, पानी से लेकर अनाज के लिए भागदौड़, भागती जिन्दगी में भागते जाना और इस बीच सोचने का मौका ही न मिलना। सपनों के सच होने के इंतजार में जिन्दगी ही सपने में बदल जाना।

मेरी बातचीत एक व्यक्ति से हुई थी जो शहर में किसी कंपनी का मैनेजर है और उसे पंद्रह हजार रूपया मिलता है। वो आई ए एस की तैयारी करने आया था और उसके दोस्त का सलेक्शन हो गया। वो तैयारी करते हुए शहर में काम करने लगा और फिर असफलता में गांव की ओर नहीं गया। क्योंकि इतने वर्षों में वह गांव के वातावरण और जीवन से हट सा गया था। उसके पास गांव में जगह है पर खेती करके आइ ए एस का प्रत्याशी कैसे घर वापसी करे। समस्या ये थी।

ठीक इसी तरह गांव के लोग शहर में उलझते जाते हैं। और गांव छोड़ते जाते हैं। गांव में दो सौ रूपया कमाने पर भी खर्चे कम होते हैं इसलिए उसका जीवन आसान होता है। परन्तु जाने किस दिवास्वप्न में खोया वह शहर में भटकता ही रह जाता है। दिल्ली में दसों दिन रहकर मैने देखा कि गंदगी और असुविधा के बीच, बगैर परिवार के लोग जानवरों से भी गंदे ढंग से रह रहे हैं। उनको देखकर लगता है कि वे पोल्ट्रीफार्म के ब्रायलर हैं। जिनको खाना है इसलिए सिर्फ मांस का गोदाम बनाया जा रहा है। और इंसानों को काम करना है इसलिए सिर्फ जिन्दा रहने की सुविधा है। सड़कों में सोना, सुलभ शौचालय में फ्रेश होना, किराये के खाट में सोना, दिन भर अपनी 3 बाई 5 की दुकान में खटते रहना, या रिक्शा खींचना, हमाली करना और फिर थककर नशे में डूब जाना। तिस पर भी गांव में रहना मंजूर नहीं। इतना तो कोई भी एक एकड़ में सब्जी उगाकर ही आराम से कमा लेगा और अपने बीवी बच्चों के साथ रहेगा। सरकारी स्कूल में पढ़ लेगा। सरकारी अस्पताल में ठीक हो जायेगा। तो फिर क्यों शहर की दौड़ ?

पलायन का दूसरा कारण है आलस। अपनी जमीन पर मजदूर जाने क्यों काम नहीं करना चाहता है। सिर्फ नागा और छुट्टी। मरनी, त्यौहार और आलस। खेतों में काम करने से गर्मी लगती है परन्तु शहर की भट्टी के सामने शायद एसी की हवा आती हो।

तीसरा कारण है लालच। सुविधाभोगी चीजों के मिल जाने की संभावना। जबकि दिवा स्वप्न ही साबित होता है। गांव में ग्यारह बजे से काम करेंगे और शहर में सुबह आठ बजे से रात के आठ बजे तक। शहर में तीन सौ बहुत है पर गांव में पांच सौ चाहिए। वर्तमान दौर में गांव में खेती के लिए आदमी ही नहीं मिलते हैं। भवन निर्माण, सड़क निर्माण करने के लिए ठेकेदार भटकते रहते हैं। अनेक दुर्घटनाएं होती है कि ठेकेदार पिकअप में लेबर भर कर ला रहा था और पिकअप पलट गई।

बस्तर के लेबर ईट बनाने उडिसा जाते हैं और उडिसा के लेबर बस्तर में ईट बनाते हैं। ये कटु सत्य है। आप आकर देख सकते हैं।

खैर!

उत्पादों के लिए बाजार कहां है ? ये जमीनी सोच का दिमाग में आना आवश्यक है। क्यों उत्पादन आसान है पर बाजार मुश्किल है। दिल्ली में सब्जी ट्रेन से जाती है बिहार के गांवों से। क्या ऐसी व्यवस्थाएं हर जगह बनायी नहीं जा सकती हैं ? विकेन्द्रीकृत व्यवस्था में दलालों की भूमिका नगण्य हो जायेगी। और उत्पादक अपने उत्पाद खुद बेचेगा। जब एक मजदूर अपने परिवार के लिए शहर में 10000 रूपयों में काम कर लेता है तो वह अपने गांव में आठ हजार कमा कर संतुष्ट क्यों न हो। यानी उत्पादक अपने सामान की मार्केटिंग खुद करे। या फिर समूह बनाकर नजदीकी शहर जाकर घर–घर में अपना माल बेचे। क्वालिटी होगी तो माल बिकने से कोई नहीं रोक सकता है। किसी व्यापारी को अपने उत्पाद न बेचकर खुद बेचने पर लाभ उसे ही मिलेगा, भले माल कम बिकेगा।

शहर जाकर इंसानों का कीड़े–मकोड़ों में बदल जाने से अच्छा है कि गांवों में रूखी–सूखी के साथ आनंद से जीना।

गांवों की ओर लौटने की हिम्मत आज कोरोना ने दी है। अपने अपमान और अपने तिरस्कार को अपनी ऊर्जा बनाकर गांवों में फिर से नागर फांदने की जरूरत है। शहर के नाले की बदबू से ज्यादा अच्छा गांव के खेतों के कीचड़ और गोबर से आती खुशबू है।

सनत जैन, संपादक बस्तर पाति

पाठकों की चौपाल

आदरणीय संपादक महोदय नमस्कार

आपकी पत्रिका मिली पढ़कर संतुष्टि हुई कि लीक पर ही नहीं चला जा रहा है। बल्कि मौलिक लेखन पर ध्यान दिया जा रहा है। वरना आजकल वही घिसीपिटी रचनाओं को शब्द बदल कर लिख दिया जाता है। न तो उसमें चिंतन होता है न ही कोई रस। ऐसी रचनाएं लिखकर मानो लेखक पाठकों पर अहसान कर रहा हो। इस दौर में सबसे ज्यादा प्रचलित है भारतीय संस्कारों पर उठते प्रश्न। भारतीय जीवन पद्धति पर कटाक्ष। भारतीय जीवन आधार को हिलाने की नाकाम कोशिश। हर दूसरी कविता राम को गरियायेगी या फिर रावण के लिए आंसू बहायेगी। इस प्रकार का लेखन आजकल फैशन हो गया है। जबकि ये गलत है, वास्तविकता से परे। एक ओर रामायण और महाभारत को मिथक बताते हैं और दूसरी ओर उसके आधार पर देश में उस वक्त से शोषण की कहानी को ढूंढ कर सबको सुनाते हैं। अजीब महौल है आजकल।

आपकी पत्रिका में बहस कॉलम के माध्यम से साहित्य की बारीकियां शानदार ढंग से समझायी जा रही हैं। पिछले अंक में बहस कॉलम के अंतर्गत गांधीवाद और मार्क्सवाद की तुलना पढ़कर बहुत कुछ समझने को मिला। मार्क्स रूपी विदेशी यूकेलिप्टस के बीज को हमारे देश के पूज्यनीय बरगद, पीपल को उखाड़ कर रोपा गया है। इसका खामियाजा देश भुगत ही रहा है। साहित्य में एजेण्डापोषण एक बहुत बड़ी बीमारी है। इसके कारण ही पाठक वर्ग पत्रिकाओं से दूर हुआ है। कोई भी अपनी चवन्नी खर्च करता है तो उसका उसे प्रतिफल चाहिए। यहां तो कई पत्रिकाओं में जातिवाद, स्त्रीमुक्ति के नाम पर नंगापन परोसा जाता है।

खैर! आपकी मेहनत और हिम्मत को साधुवाद जो आप धारा के विपरीत चल रहे हैं।

किशोर कुमार जगदलपुर

आदरणीय किशोर जी नमस्कार

आपका पत्र प्राप्त हुआ। धन्यवाद। यूं तो काफी पत्र आते हैं परन्तु आपका पत्र इसलिए महत्वपूर्ण महसूस हुआ कि इसमें आपने 'बस्तर पाति' की प्रकाशन सामग्री पर टीप की है और वह भी गहरी।

वास्तव में यह सच्चाई है कि दुनिया में लोगों की तरह, पत्रिकाएं भी भाग रही हैं सिर्फ इसलिए कि महीने, दो महीने या तीन महीने में प्रकाशित करना ही है। मजबूरी है अगर रचनाएं आयें तो ठीक न आयें तो ठीक। स्तरीय हों या न हों। पत्रिका के सदस्यों की रचनाएं प्रकाशित करना मजबूरी है। कुछ महान घोषित लेखकों की रचनाओं का प्रकाशित करना मजबूरी है क्योंकि इससे ही पता चलता है कि हमारी पत्रिका महान है। लाइम लाइट में रहने वाले रचनाकारों को प्रकाशित करना, उनके समूह को मान्यता देना, एक तरह से हिन्दी पत्र पत्रिकाओं में परम्परा बन गई है। क्योंकि ऐसा न हो तो आपकी पत्रिका की चर्चा उन मठाधीशों के बीच नहीं होगी और आप बेपटरी हो जाओगे।

यहां रेखांकित करना जरूरी है कि कुछ पत्रिकाएं खुद को स्थापित करने या फिर अपने लोगों को स्थापित करने के लिए प्रकाशित की जा रही हैं। या फिर विज्ञापन और एन जी ओ बना कर सरकारी चंदा ऐंठने के लिए। इनके बीच कुछ पत्रिकाएं स्वांतसुखाय प्रकाशित की जा रही हैं खुद का धन, मन और तन खपाकर! न तो इनको विज्ञापन मिलता है न ही साहित्य के क्षेत्र में विशेष सम्मान। फिर भी ऐसे समर्पित प्रकाशक, संपादक और घर फूंक तमाशा देखने के शौकीन समय समय पर इस ध रा पर प्रगट होते रहते हैं। इनके भीतर जज्बा होता है समाज को बदलने का, समाज के लोगों की सोच को बदलने का और मसाज में व्याप्त बुराइयों को दूर करने का। अपनी क्रांतिकारी सोच के चलते इस क्षेत्र में कूद पड़ते हैं। जो होगा देखा जायेगा की सोच पर। न तो उनको छपाई का दाम पता होता है न ही हिन्दी व्याकरण का ज्ञान होता। पर उनके पास होता है जज्बा और हिम्मत अनजाने आने वाली समस्याओं से जूझने की ताकत। इसी हौसले के दम पर वह धीरे–धीरे सबकुछ सीख जाता है। तमाम आलोचनाओं और घमंड से भरे साहित्यकार और स्वघोषित महान स्थापित, राष्ट्रीय साहित्यकारों का सामना करता है।

परन्तु वो हारता एक ही चीज से है, वो होता है उसका नाजायज उपयोग करना। लालची लोग (साहित्यकार कहना गलत होगा।) इस हिम्मत से भरे युवा का तरह तरह से उपयोग करने लगते हैं। सिर्फ इससे ही चिढ़ने के कारण पत्रिका का भविष्य अंधकारमय हो जाता है।

फिर भी पांच से दस साल तक ऐसी लघुपत्रिकाओं की आयु होती ही है। इस बीच और कोई ऊर्जावान युवा आ जाता है। यह प्रक्रिया सतत चलती रहती है।

इन लघुपत्रिकाओं में क्या प्रकाशित किया जाना है यह एक बहुत बड़ा सवाल है। तमाम पत्रिकाओं में स्त्री विमर्श के नाम पर अश्लील कहानियां भी प्रकाशित की जाने लगी हैं। किसानों, मजदूरों के नाम पर ढेरों रचनाओं के चलते लघुपत्रिकाएं मजदूर यूनियन का मुखपत्र लगने लगी हैं। दलित विमर्श के नाम पर वकालत का अड्डा हो गई हैं। सेकुलर साबित करने के लिए और खुद को सभी जगह स्वीकार्य बताने के लिए अल्पसंख्यकों की सच्ची झूठी गाथाओं का धारावाहिक बन गई हैं।

बार बार एक ही बात को घुमाफिरा कहने प्रकाशित करने के कारण पत्रिका पढ़ना एक उबाऊ काम है। समय काटने का मतलब समय बरबाद करना तो नहीं होता है। आपने सही कहा कि एजेण्डा रचनाओं से पत्रिकाओं का समूह भरा पड़ा है। बल्कि यूं कहें कि एजेण्डा रचनाओं से गंधा रहा है तो अतिश्योक्ति न होगी।

कुछ समय पूर्व लघुपत्रिकाओं के सम्मेलन में भाग लेने का मौका मिला था। उस दो दिन के सम्मेलन में मेरे अलावा किसी और ने इस विषय पर बात नहीं की कि पाठक पत्रिकाओं से दूर क्यों हैं ? बल्कि सभी ने जल जंगल जमीन का एजेण्डा दिनरात लाल झंडे के साथ उठाये रखा।

मैं उस सम्मेलन में कई बार खुद को च्यूंटी काट कर जांचता रहा कि कहीं मैं किसी राजनीतिक कार्यालय की मीटिंग में तो नहीं आ गया हूं। वर्तमान सत्ता के प्रति बैर देखकर अचरज से भरा रहा। दिनरात अपने अधिकारों और संविधान की बात करने वाले वर्तमान सत्ता को स्वीकार ही नहीं कर पा रहे थे। वे बेचारे लेखक थे इसलिए हाथ में कलम थी वरना हथियार होने पर उसी दिन सरकार निपटा देते।

हंसी आने के साथ बेचैनी भी हुई कि इन पत्रिकाओं ने एक पूरी सदी में समाज को अजीब तरह के ढांचे में जकड़ दिया है। हम खुद से ही नफरत करते जी रहे हैं। अपनी संस्कृति को खुद ही दोयम मान कर शर्म से गड़े हुए हैं। अपने संस्कार मूढ़ता के चिन्ह लग रहे हैं जिसे हम जब तब दीवारों से रगड़ रगड़ कर मिटाने की कोशिश करते रहते हैं।

लेकिन तमाम विसंगतियों के बावजूद हमारे जीवन में सोशल मीडिया का आना और इसका सर चढ़कर बोलना बहुत कारगर रहा। पत्रिकाओं का एकाधिकार खत्म हो गया। उनका एजेण्डा फैलाना खत्म हो गया। समाज आंखें फाड़ कर देख रहा है कि जिन पत्रिकाओं को हम जीवन में आवश्यक अंग मानते थे वो तो पूरी तरह से बिकी हुई थीं, झूठ का पुलिन्दा थीं। धीमा जहर झटके में बेअसर हो गया। लेखक समाज प्रकाशन के मोह से धीरे धीरे दूर जा रहा है। वास्तविकता से जुड़ना उसके लिए महत्वपूर्ण हो गया है। उसके पास सोशल मीडिया का असीमित स्पेस है। जहां अनगिनत पाठक हैं। जिसकी लेखनी में दम है वो आगे बढ़ रहा है और जिनकी बेजान लेखनी है उसे तुरंत नकार दिया जा रहा है। पत्रिकाओं में छाप–छाप कर महान बनाने की प्रक्रिया पर पूर्णतः लगाम लग गया है।

आपका धन्यवाद जो आपने ऐसा पत्र लिखा कि एक समीक्षा हो गई।

सनत जैन संपादक बस्तर पाति

साहित्य के निशाने

सन 1984 में एक हिंदी फिल्म आयी थी –'पार्टी' इस सिनेमा को गोविंद निहलानी ने डायरेक्ट किया था। सिनेमा ने समानांतर विचार को केंद्रित किया था, जैसाकि हम सभी जानते हैं निहलाने जी साम्यवादी विचार के पक्षधर थे। दूरदर्शन से प्रसारित 'भारत एक खोज'–जवाहरलाल नेहरू के पुस्तक पर आधारित सीरियल था –बड़ी कुशलता से आपने नेहरू के विचारों, विश्लेषण को कैमरे के मार्फत चिन्हित किया था। प्रसंगवश यह कहना अनुचित नहीं होगा कि आज की मुख्यधारा के सिनेमा अपने बजट के लिए और बाहुबली का पिछलग्गू होने में ही इनकी कला सार्थक संपन्न मानी जा रही है। यह बात समझ से परे है कि कहानी या कला सिर्फ बजट की मोहताज कब से हो गई ? और इस बात को सृजनधर्मी ही नहीं समझ पा रहे हैं! खैर प्रसंग आया है तो आज के सिनेमा–टीवी सीरियल्स पर अपनी प्रतिक्रिया लिख दी। फिलहाल, गोविंद जी ने नेहरू जी की पुस्तक पर आधारित एपिसोड को प्रभावी व कलात्मक तरीके से और बड़े ही कम बजट में लोक कथाओं जैसा आस्वाद रचा था। उन्हीं निहलानी द्वारा फिल्म 'पार्टी' में सवाल उठाया गया था कि एक कलाकार या रचनाकार को पार्टी–विशेष धर्मी ही होना चाहिए या नहीं! इस फिल्म में इस आशय को लेकर कुछ रोचक प्रसंग भी जोड़े गए। मसलन वे विचार जो कला को सब–तरह के बंधन–विचार से मुक्त रखे। वह कला जो निजी तौर पर स्वांतः सुखाय हो। उसे पार्टी–राजनीति या विचार–विशेष से कोई ताल्लुक न हो। कला आत्मा को मुक्त करने, उसे सिद्ध करने, उसे अभिव्यक्त करने का जरिया है। कला निजी है, गोपन है, किसी की अभिव्यक्ति पर किसी अन्य की टिप्पणी बहुत मायने नहीं रखती। यह सब्जेक्टिव विषय है। व्यष्टि व व्यक्ति केंद्रित। और, इस नाते एक रचनाधर्मी के कार्य को हम स्वीकार ना करें तो अस्वीकार भी नहीं। यही उसका सम्मान है। यह उसकी अभिव्यक्ति है –यह उसके निजी अस्तित्व का विषय है अतः उसके अस्तित्व की अभिव्यक्ति व मुक्ति के लिए आपके अस्वीकार्य का क्या प्रश्न!

यहां पर कला व्यापक है, पर उतनी ही निजी! इसका विषय और अभिव्यक्ति के साधन असीमित है। इसका विषय राजनीति हो सकता है और नहीं भी। इसके विषय धर्म हो या आत्मा, या ज्ञान हो, या मूर्खता, विषय पदार्थ या मानस –कोई दायरा नहीं । यह निजी मुक्ति है –व्यष्टि मुक्त होता है।

चूंकि 70–80 के दशक में साम्यवादी विचार से सबसे ज्यादा हमारे बुद्धिजीवी प्रभावित थे और बहुत हद तक सच्चे अर्थों में अनेकों अनेक जायज सवाल से देश–समाज–राजनीति को प्रेरित करते रहे हैं। उसी फिल्म में मार्क्सवादी विचार कि कला–रचनाधर्मी को 'पार्टनर तुम्हारी पॉलिटिक्स क्या है, पार्टनर तुम्हारी राजनीति क्या है –इत्यादि परिपेक्ष्य में समान राजनीतिक पार्टी से जुड़ी होनी चाहिए। और स्पष्ट शब्दों में रचनाधर्मी को एजेंडाबद्ध लेखन–कला रचना करनी चाहिए। दूसरे शब्दों में उन्हें समाजवादी, साम्यवादी पार्टी या विचारधारा से जुड़े रहना चाहिए। कहने की आवश्यकता नहीं है कि इन बुद्धिजीवियों, लेखकों, रचनाकारों की भी यूनियन हो। ताकि सत्ता अगर संविधान सम्मत कार्य ना करें या जबरन इमरजेंसी जैसी स्थिति उत्पन्न करें तो यहां यूनियनबाजी की जा सके। एकता प्रदर्शित की जा सके।

मार्क्सवादी विचारधारा के तहत जैसा कि सोवियत यूनियन की स्थापना (1917 ब्रोल्शेविक क्रांति) के बाद से हम देखते हैं कि किस तरह मार्क्सवाद के पक्ष में लेखन किए गए। और यह भी देखा गया कि किस तरह विरोधी विचार प्रेषित करने वाले रचनाकारों को सुदूर साइबेरिया भेजा जाने लगा।

एक विचार चाहे कितना ही भला हो, जनहित में हो, जनवादी हो यदि सत्ता विरोधियों को कुचलने के लिए आबद्ध हो जाता है और तानाशाही पर उतर जाता है तो प्रश्न स्वतः उठ जाता है। सोवियत रसिया और मार्क्स के चेले आज भी आदर्श राज्य की स्थापना में तानाशाही पर उतारू हैं। हमारी अवधारणा ही सही है और हमारा तरीका ही सही है। सत्ता बंदूक की नली से आती है। यह क्रांति है। यह मानव दासता से मुक्ति का रास्ता है। यह व्यक्ति की नहीं, समाज की मुक्ति है। उस समाज की जो सदियों से दमित है। दलित है। शोषित है। लाचार है। गरीब है। यह शोषणमुक्त समाज ही वास्तविक मुक्ति है जिसके लिए बंदूक की आवाज एक सार्थक आवाज है।

बड़ा अजीब सा दृश्य है । प्रसंग तो कला, रचनाधर्मिता का उठा था। समष्टि व व्यष्टि की मुक्ति का प्रसंग आया था। एक आदर्श राज सत्ता द्वारा आदर्श समाज की कल्पना आयी थी। पर एक सिद्धांत कैसे बंदूक और तानाशाही पर जा अटका! कला और रचनाधर्मिता का इससे क्या नाता! क्या पार्टी–एजेण्डा यही है ? या सचमुच कहीं बड़ा झोल है?

वापस अपने मूल प्रसंग पर आते हैं। कला और रचनाधर्मिता व्यक्तिपरक हो या समाजपरक ?

हिन्दी साहित्य के रचनाधर्मियों ने अद्‌भुत समाजपरक परिदृश्य से ओत–प्रोत रचनाओं से पटल पाट दिया। अब देखें कि कैसे एक तरह की रायटिंग तत्काल 'दायरे' में और 'दायरे से बाहर' हो जाता है। जब अकबर और औरंगजेब को महान शासक घोषित किया जाता है तो वैसी रचना 'हिन्दु–मुस्लिम

एकता' को अनिवार्य मानते हुए तत्काल रचना 'दायरे में' आ जाती है और रचना क्रांतिकारी बन जाती है। क्योंकि विचारधारा के अनुसार सेक्युलरिज्म भी मार्क्स के समाजवादी समाज का आवश्यक तत्व है अतः यह भारत के संदर्भ में 'फिट' बैठता है। उसी तरह जब दलित, शोषित, वनवासी, मजदूर, स्त्री इत्यादि पर लिखा जाता है तो वह भी स्वीकार किया जाता है। पर जैसे ही आप चंद्रगुप्त मौर्य और चाणक्य पर लिखते हैं, स्त्री की जगह पुरुष केंद्रित लिखते हैं, छोटी जाति की जगह ऊंची जाति पर लिखकर उन्हें समाज का हीरो बताते हैं, अमीर वर्ग के अच्छे कर्मों को उजागर करते हैं, बनिया को, पंडित को, शोषक नहीं दर्शाते हैं तो यह सब 'दायरे से बाहर' हो जाते हैं। यानी कि जैसा कि मालूम है कि ऐसा साहित्य कूड़ा हो गया। चाहे जितना सच और जितना अच्छा लिखा गया हो। ठीक इसके विपरीत यदि आपका विषय दायरे में फिट हो तो आपकी रचना पर तालियां ही तालियां!

तो यह है हिंदी साहित्य का यथार्थ!

फिलहाल हिंदी साहित्य का इतिहास बताने में मेरी दिलचस्पी नहीं है। मगर प्रसंग आया है तो उल्लेख करना गलत नहीं होगा। आजादी के बाद प्रेमचंद के यथार्थवादी रचना के पश्चात और यदा–कदा कुछ उल्लेखनीय रचनाकारों को छोड़कर यदि विचार करें तो सत्तर–साठ के दशक में फ्रॉयड का मनोविश्लेषण और डार्विन का विकासवादी सिद्धांत के तरफ हमारे नकलची रचयिता भटके। बड़ा मजेदार हिंदी साहित्य में आंदोलन आया था जिसे अकहानी, अकविता, नई कहानी, नई कविता इत्यादि क्रांतिकारी नामकरण दिए गए थे। उन दिनों पढ़े एक भी कहानी इस लेखक को याद नहीं न ही वे कहानियां गले से उतरती थी। लेखक समझता था कि वह साहित्य–शिशु है अतः ऐसी गंभीर कथाएं उसके बस की नहीं। (गौर करें–यहां पाठक मर जाता है!) उन बीस–तीस सालों में लिखी गयी एक भी रचना शायद पाठकों को याद हो। उन्हीं दिनों सामान्य पाठकों के लिए आचार्य चतुरसेन, भगवती चरण वर्मा, शिवानी कुशवाहा कांत इत्यादि जैसे लेखक खूब पढ़े जा रहे थे। उनके अपने अलग पाठक वर्ग थे मगर जहां तक मैं समझता हूं और अध्ययन से ज्ञात हुआ है कि उन्हें साहित्य मुख्यधारा से पृथक रखा गया। खास विचार केंद्रित किसी 'वाद' से प्रेरित और उस 'वाद' या 'सिद्धांत' का पात्र द्वारा भौंडे तरीके से चित्रित कथा–कहानी ही हमारे साहित्य हुआ करते थे। और, आज भी वही आलम है।

हमारा हिंदी साहित्य और इसके मुख्य धारा के विद्वानों ने कभी जहमत नहीं उठाई कि अपनी परंपरा अपने परिवेश अपनी विरासत से कुछ सबक लें। उनके अनुसार कथा–कहानी कहना तो हमारी परंपरा में था ही नहीं, अतः पीछे मुड़कर क्या देखना! इसे तो प्रेमचंद की महती कृपा समझी जाए, जिन्होंने रूसी कथाकारों को अपना आदर्श बनाया और कथा कहानी कहने और समझने का एक नया रंग दिया। एक पृथक पटल ही खोल दिया।

एक बात दिलचस्प है, हालांकि प्रेमचंद जरूर समाज में घुटे कोढ़ को देख–समझ चुके थे, सामंतवादी समाज की सड़न अच्छी तरह चित्रित कर चुके थे –मगर क्या सचमुच उन्होंने मार्क्स के 'गाइडलाइन' को देख–समझकर ऐसा किया ? जो बुद्धिमान और 'दायरा' में नहीं और 'दायरे में' का दिग्दर्शन करते हैं उन्हें प्रेमचंद की प्रारंभिक रचनाएं समझनी चाहिए कि वे सब की सब गांधीवादी आदर्श से प्रेरित थी न कि मार्क्स प्रेरित! लगभग अस्सी प्रतिशत कहानियां–उपन्यास उनके गांधी दर्शन से प्रेरित रहे हैं। हमारे हिंदी विद्वानों को यह समझना चाहिए और प्रेमचंद के लेखन को भी। बाद के प्रेमचंद के यथार्थवादी लेखन भी सीधे–सीधे किसी 'वाद' से प्रेरित ना होकर वे मानव के यथार्थ चित्रण को चित्रित करते हैं। हां, आपको यहां अपना एजेंडा खूब दिखता है, इसलिए आप प्रेमचंद की पूंछ थाम लिये हैं। बेचारे प्रेम जी!

इसमें कोई दो राय नहीं कि प्रेमचंद आधुनिक विचार स्वतंत्रता समानता के विश्वव्यापी शब्दावली और विचार से प्रेरित थे। बॉल्जाक उनके प्रिय लेखक थे, उन्हें वे पढ़ चुके थे। जहां प्रेमचंद का बचपन मशहूर क़िस्सा–गो हुआ करता था, किस्सा तोता–मैना एय्यारी की कथाएं केवल मनोरंजन के लिए होती थी, प्रेमचंद का लेखन प्रतिबद्ध हुआ, सोद्देश्य हुआ। उन्हें पाठकों को नए आयाम, नए विचार से जोड़ना भी था। और एक मायने में, सही अर्थ में तब उन्होंने क्रांतिकारी कार्य किया। हिंदी कथा–शैली को एक नया अर्थ दिया। नयी भाषा दी। वास्तविक जनवादी लेखन किया।

पर क्या प्रेमचंद ने ऐसा किसी एजेंडे को धर्म मानकर किया ? मार्क्स की किताब पढ़कर ? अगर एक शब्द में कहा जाए तो प्रेमचंद लेखक से अधिक समाज के संत थे। वे मानव सुधारक थे! समाज सुधारक! मानव हित चिंतक जिसका रास्ता लेखन का था –मंजिल मनुष्य!

ये तो तय है कि प्रेमचंद जैसे लेखक मोटा ग्रंथ पढ़कर नहीं पैदा होते हैं। किताबी मार्क्स–थ्योरी पढ़कर वे सूरदास की रचना नहीं करते थे। वे जीवन की नंगी जमीन पर नंगे पांव चल चुके थे। कोई ग्रंथ प्रेमचंद को क्या पैदा करेगा, जीवन की सच्चाई और यातनाओं से बड़ी पाठशाला और कहां ? और उन्हें समझने की संवेदना! स्थिति बदलने का विवेक। प्रेमचंद में ये सारी बातें थीं। टेबल–कुर्सी और और कॉफी के साथ पान चबाते हुए आलोचक और विदेशी आयातित माल पर निर्भर गरीब; नहीं दलिद्दर मस्तिष्क प्रेमचंद में और क्या ढूंढता!

इस लेखक ने हिंदी साहित्य में प्रकाशित अनगिनत आलोचनात्मक पुस्तकों को पढ़–गुन डाला –आज से लगभग 20 साल पहले! और आज तक एक भी आलोचनात्मक पुस्तक ऐसी नहीं मिली जो इस बात का विश्लेषण करती हो कि आखिर एक कहानी या एक अच्छी कविता क्यों और कैसे कलात्मक हो सकती है। इसका विश्लेषण नदारद है।

इस प्रसंग पर विद्वान आलोचक अनंत रूप से मौनव्रती हैं। और चुप हैं।

उनका विश्लेषण का विषय होता है –विषय! रचना का विषय! रचना 'दायरे में है' रचना 'दायरे में नहीं है'। बस!

बहुत बड़ा अपराध होगा यदि आचार्य रामचंद्र शुक्ल चिंतामणि भाग 1 एवं भाग 2 तथा आलोचक देवराज लिखित आलोचनात्मक पुस्तक का जिक्र न किया जाए। वे सारगर्भित लगीं। यह निजी ख्याल है। आचार्य शुक्ल जी की चिंतामणि तो हर रचना धर्मी को अवश्य पढ़नी चाहिए।

इस प्रसंग को उठाने का यही मकसद था कि साहित्य लेखन किसी पार्टी विशेष का हिमायती हो कर रहे अन्यथा अब तक वे आधुनिक हिंदी साहित्य के इतिहास को देखते हुए प्रतीत होता है वह पार्टी विहीन लेखन और लेखक हाशिए का लेखक –लेखन है। और यह आलम है कि किस आधुनिक हिंदी साहित्य समाज का ? उस साहित्यिक समाज का जहां किताबों के पाठक नदारद हैं या हैं तो सिर्फ प्रकाशकों को पता होता है –लेखकों को तो पाठक और रायल्टी दूर की कौड़ी है। चार–आठ पंडे–पुरोहित अपने दो चार चेले–चेलियों को लेकर साहित्यिक मठ की स्थापना किए हुए हैं। वे ही बहुचर्चित हैं। मीनार पर बैठा कौवा खुद को जैसे मुल्ला समझने लगता है। ये वे चुनिंदा मीनार और कोव्वों के घरौंदे हैं। ऐसे कौव्वे अपने नहीं, दूसरों (कोयल) के अंडे सेजने का काम करते हैं। ये बुद्धिजीवी हैं। और अगली क्रांति इन्हीं की कलम से होकर निकलेगी।

क्या कभी इन आधुनिक हिंदी के विद्वानों से पूछा गया है या इनको अक्ल आई है कि इस आधुनिक हिंदी साहित्य की परंपरा, इतिहास अपनी जमीन में खोजें ? नहीं, प्रेमचंद के पहले या बाद रूसी मार्क्सवादी साहित्य ही इनकी वह महा–मीनार है जहां से आगाज और अंत दोनों होता है। इन्हें अपने पुराण, इतिहास या महाकाव्य, जातक कथाएं या हितोपदेश या अन्य अनेक लोककथाएं हजार पावरफुल चश्मा लगाकर भी नहीं दिखती। दूरबीन दिखाओ तो स्टालिन और लेनिन नजर आते हैं। एक महाशय हिंदी के कुख्यात लेखक संपादक हुए, प्रेमचंद परंपरा के धाकड़मैन! इनका काम चूहे की तरह कुतरने में, कुतर्की, महा–कुतर्की होने में हासिल था। वे बस हमारे महाकाव्यों में स्त्री मुक्ति और गुलामी के दस्तावेज ही देख पाते थे। जन–जन के प्रिय राम उन्हें स्त्री विरोधी दिखते। यानी हमारी अथाह परम्परा यदि उन्होंने देखा भी कुतरने और कैंची चलाने के लिए, कुछ सार्थक नहीं, हजारों साल पुराने इतिहास को आज के मार्क्सवादी स्त्री एजेंडा के चश्मे से परखने के लिए। ऐसे बहादुर दुःसाहसी लेखन पर कौन न मर मिटे!

ये सारी बातें कहने का प्रयोजन क्या है ? ये सिर्फ वो रेखाचित्र है जो छोटे से आईने में अपनी सूरत दिखा रहा है कि देखो! यह हम हैं –आधुनिक हिंदी साहित्य! हम हाशिए पर नहीं (पाठक गया भाड़ में –मूर्ख पाठकों को इनकी क्रांतिकारी बुद्धिमता से क्या लेना देना!) हम मुख्यधारा के लोग हैं और हमारी पार्टी है। साहित्य संबंधित हमारी स्पष्ट सोच है। स्पष्ट दिशा–निर्देश हैं। स्पष्ट एजेंडा है। हां, इस एजेंडा में पाठक कहीं भी नहीं!

ये तो हुआ पार्टी के लिए लिखने वालों का इतिहास! क्षमा करें.... यह इतिहास नहीं बस रेखा चित्र है। बहुत ही सीमित लाइनों में चित्रित!

अब जरा इनकी पार्टी का हुलिया भी ले लें। जिनके लिए सादर समर्पित, गुरुजी आशीष, बेटा बख्शीश, चेला नफीस बने बैठे हैं।

इनकी पार्टी ?

गरीबों के लिए.....मजदूरों के लिए.....स्त्रियों के लिए..... आम जनता के लिए.....आवाम के लिए.....प्रजातंत्र के लिए..... गणतंत्र के लिए.....संविधान की आत्मा समानता स्वतंत्रता के लिए....बंधुत्व के लिए....हाशिए पर फेंके गए तमाम सभी लोगों के लिए.....!

अब आप और जोर लगाइए दिमाग में और ढूंढिए कि कौन और कहां हैं ऐसी पार्टी और पार्टी के नेता!

क्षमा करें यहां मार्क्सवाद की भावना या आत्मा को ठेस पहुंचाने की नहीं–पिछले बस्तर पाति के अंक में मार्क्सवाद पर विस्तृत रूप से लिखा जा चुका है। यहां देशी मार्क्सवादियों–मार्क्स के विचार लेकर अपनी जमीन में मैग्नीफाइंग ग्लास से रचनारत रहने वाले लेखकों, संपादकों की बात हो रही है, जिन्होंने हिंदी साहित्य की मुख्यधारा स्वयं को कहते आए हैं। यह एक छोटा आईना है उनका चेहरा देखने दिखलाने वास्ते!

''पता नहीं हिंदी साहित्य का क्या हाल होता अगर रूसी लेखकों से भारतीय लेखन नहीं जुड़ता तो! भारत में तो कहानी लिखी ही नहीं गयी। ये तो मुंशी प्रेमचंद थे जो मार्क्सवाद से सीख लेकर अपने देश में कहानी की नींव रखी।''

इस विचार से आप जरूर चौंके होंगे। जी! ये विचार है एक माने हुए शहर के देशी मार्क्सवादी विद्वान का, जिनका

हिंदी कथा–कहानी के विषय में ये राय है।

अब इसका उत्तर क्या हो!

उसी तरह आदरणीय गोविंद निहलानी की कृति 'पार्टी' फिल्म ने सवाल उठाए कि रचनाधर्मियों का स्पष्ट सम्मान पार्टी विशेष के लिए हो। जाहिर है उनका एजेण्डा भी हो।

मार्क्सवाद एक व्यापक सिद्धांत है और समाज–राज्य के बहुतेरे उनके दर्शाये एजेण्डे में फिट हो जाते हैं। पर, क्या लेखन फैक्ट्री का माल है या कला रचना ? कि रिक्शेवाले पर नहीं लिखा, चायवाले को दलित–शोषित नहीं बताया और सेठ जी को जूते से पीटते नहीं चित्रित किया तो वह साहित्य ही नहीं! सत्य की जरा भी परख रखने वाले विचार कर सकते हैं। सत्य की खोज करने वाले वहां ठहर सकते हैं–यह कैसा यथार्थ! सच यही है! आतंकवाद भी एक सच है –क्या किसी आतंकवादी द्वारा किसी मासूम की हत्या करने दर्शाने वाली तस्वीर हम अपने कमरे में सजाना चाहेंगे ? यह भी सच है। यथार्थ है।

सिर्फ विषय छांट कर उन पर लिखना और लिखवाना –निश्चित रूप से यह न सही लेखन है और न ही आदर्श साहित्य का रूप! आप कैसे उन तमाम महान ग्रंथों को दरकिनार कर सकते हैं जो आपके चश्मे से न दिखे! दिखता तो जरूर है मगर उन्हें अनदेखी करने की प्रतिज्ञा आपने ले रखी है। ये है आपका सद्–साहित्य! तो आप के महा–गुरु और महा–चेले कहां हैं ? वे क्या कर रहे हैं ? आपके द्वारा परोसा गया हिंदी साहित्य कितना आवाम द्वारा स्वागत किया जा रहा है, आपको ज्ञात होगा.....सच ये है कि आप रचनाधर्मी हैं ही नहीं, आप रोटी–सेंक पार्टी के मेंबर हैं –बस!

दुनिया का कोई महान ग्रंथ उपयोगी साबित नहीं हो सकता अगर उस महान ग्रंथ के अध्येता आप जैसे होंगे। क्षमा करें –यह अध्येता पर निर्भर करता है कि वह ग्रंथ से क्या और कितना ले। अगर इस विवेक की कमी है तो बंटाधार तो निश्चित! उसी तरह विवेकवान और बुद्धिमान अनुयायी भी चाहे तो अपनी परम्परा और ग्रंथों की माकूल व्याख्या कर समय व स्थान सापेक्ष दिशा–निर्देश प्राप्तकर अच्छी बातें फैला सकते हैं। इतिहास बताता है कि आप्त पुरुष के वचन, हमेशा पथभ्रष्ट लोगों ने भ्रष्ट ही किये हैं।

यहां गोविंद निहलानी के उठाए सवाल को जायज या नाजायज ठहराने का उद्देश्य नहीं है। अगर हम उनकी माने तो सीधा सा एक सवाल आपसे है –वो कौन सी पार्टी है जिसका हम समर्थन करें।

फिलहाल इसी बहाने महान गोविंद निहलानी जी को आभार –इस बहाने चर्चा के लिए। आपकी रचनाधर्मिता और प्रतिबद्धता के लिए! अगर आप किताबी ज्ञान से कैंसरग्रस्त नहीं है तो मनुष्य मूलतः अपने परिवेश व परंपरा से सीखता आया है। मनुष्य स्वयं ही जिज्ञासु व विवेक सम्मत प्राणी होता है –खासकर रचनाधर्मी लोग!

इनकी प्रतिबद्धता क्या है –मनुष्य और सिर्फ मनुष्य! मनुष्य का परिवेश!

इसी को दूसरे अर्थ में हम कहते हैं संवेदनशीलता! पर आप की संवेदनशीलता ? आपके द्वारा बताएं मापदंड से 'कुछ लोग' निर्धारित 'खल' होते हैं और 'बहुत लोग' सहानुभूति के पात्र! उस पर भी आपके लेखन में कलात्मक पक्ष पर जोर दिया जाता है तो आप का एजेंडादोष छिप जाता! मगर आपने मनुष्य नामक जीवंत प्राणी और गतिशील प्राणी को खांचे में बांट दिया। आपने अपनी पार्टी बना ली। वस्तुतः आपकी पार्टी नदारद है मगर आपने अपना हितैषी ढूंढ लिया है। यहां भी कोई दोष नहीं –क्योंकि आपकी दुनिया ही उल्टी है –उद्गम से मुहाने तक नहीं, मुहाने से उद्गम तक की यात्रा यहां होती है। सबसे मजा, आप उन करोड़ों के हितों की वकालत करते हैं उनका साथ आपको कितना मिल पाता है ? क्यों.....?

कभी सोचकर देखिएगा। आपके विचार कॉफी टेबल से कभी निकले भी हैं...। बाहर खुली हवा में....!

और अंत में आप विद्वानों से सिर्फ एक सवाल –आपके अनुसार कला–रचना यदि व्यक्ति और व्यष्टि को मुक्त करने का साधन है तो आपकी संवेदना में यह 'खांचा' क्यों ? क्या मुक्ति का पाठ सिर्फ चंद लोगों के लिए है ? वे सारे ऐसे साहित्य जो आपके 'खांचे' से बाहर हैं उन्हें मुख्यधारा का साहित्य कब मानेंगे, लंबी लिस्ट है.....थोड़ा चश्मा उतारिए। कॉफी टेबल से बाहर आइए.....। क्योंकि आप स्वयं दलित–दमित कहते–कहते आज हाशिए पर ही हैं। तोहफा कुबूल कीजिए जहांपनाह!

एक रचनाकार किसी ग्रंथ से प्रेरित नहीं है, शायद वह स्वांतः सुखाय के लिए कुछ लिख रहा है। उसने बहुत अच्छी और मानवीय कथा लिखी है। प्रश्न है–

एक व्यक्ति या व्यष्टि क्या है ?

एक अस्तित्व.....(कोई खास 'वादी' है तो स्वीकार नहीं तो अस्वीकार)

एक मनुष्य.....

उसका एक परिवेश.....उसकी भाषा.....बोलचाल....

एक निश्चित स्थान और समय

उसकी परम्परा और आज का सच–

सबसे बढ़कर उसके मनुष्य होने की गरिमा....!

क्या हमें उन्हें अस्वीकार कर देना चाहिए क्योंकि वह किसी 'वाद' से प्रेरित नहीं हैं ?

बहस

कला–रचनाधर्म अगर मुक्ति का जरिया है तो संपूर्ण मुक्ति का रास्ता है, अधूरा या एजेंडाबद्ध नहीं! जरूरत सच को सीधा देखने और समझने की है –चश्मा उतारकर...! 'वाद' के माध्यम से नहीं!

वैसे भी सच नंगा होता है, सीधी आंखों से देखना सबके वश में नहीं!

–बस्तर पाति फीचर्स

लघुकथा

कमल या कीचड़

अलका पाण्डे
भानपुरी, छ.ग.
मो.–9009481026

'समझ में ये नहीं आता कि यहाँ किसी के थोडा फेमस हो जाने पर लोग, उसके अतीत की बखिया क्यों उधेड़ने लग जाते हैं....अरे! उसका वर्तमान देखो न...मम्मी...मेरी शूज कहाँ रखी है....देखो न प्लीज...।' हर्ष झुंझलाते हुए ऑफिस जाने को तैयार हो रहा था।

'अरे! आई बाबा, थोडा नजर इधर–उधर घुमा भी लिया करो...ये देखो पलंग के नीचे है शूज तुम्हारे...।' अर्चना मुस्कुराते हुए हर्ष की ओर देख रही थी।

'क्या हुआ बेटा! तुम किसके फेमस होने की बात कर रहे थे ?'

'अरे मम्मी! मैं मीडिया में फेमस हो रहे लोगों की बात कर रहा था...देखो न हम लोगों की आदत है, बहुत जल्दी किसी को सर पर बिठा लेते हैं और फिर उसे, उसी तेजी से जमीन पर पटक देते हैं. ..पता नहीं क्या मिलता है लोगों को ऐसा करने में...अरे! वर्तमान देखो न...।'

'अरे! ऐसा नहीं है बेटा! ये लो चाय पहले पियो फिर मैं तुम्हें समझाती हूँ।' अर्चना बोली–'देखो बेटा हमारे वर्तमान का स्वरूप हमारे भूतकाल पर आधारित होता है...अगर भूतकाल इतना संघर्ष भरा नहीं होता तो...वर्तमान इतना निखरता कैसे...हाँ, तुम्हारी ये बात सही है कि लोग फेमस व्यक्ति में पूरा ईश्वर तलाशने लगते हैं...और भूल जाते हैं कि...चमकता हीरा कोयले की खदान में ही मिलता है. ..और कमल सिर्फ कीचड़ में ही खिलता है...इसी तरह फेमस लोगों के काले और कीचड़ युक्त माहौल में न उलझते हुए उनकी मेहनत की तरफ ध्यान देना चाहिए....क्यूँ ठीक है न बेटा...।'

'मम्मी! आप बिल्कुल सही कह रहीं है।' हर्ष तारीफ भरी निगाहों से अपनी मम्मी को देख रहा था।

और मम्मी बड़े ही शांतिपूर्वक मुस्कुराते हुए बेटे के चिंतन पर गर्व कर रही थी।

काव्य

उषा अग्रवाल पारस
201 साई रिजेंसी
रवि नगर चौक,
अमरावती रोड
नागपुर–440001
मो–9028978535

कविता का बनना

तन्हाई से भरा उफ!
कितना बोरिंग सा था
कल का वो दिन।
दोपहर ढलते ढलते
घिर आई थी जब
फिर उदास सी शाम
और मुझे लपेट लिया था
पीत ज्वर की तरह।
गुलदान में सजा फूल
गिलास में रखा पानी
प्रतीत हो रहे थे, मानो
कुनैन की गोली से।
जिसे बिना खाये ही
मुंह कसैला हो गया था।
चहलकदमी करते करते
दुखने लगा था मन भी।
फोन की घंटी बजी थी
वह तुम थे.....
जो कह रहे थे.....
मेरी व्याकुलता भांप
तो चली आती ना....
कुछ कहते, कुछ सुनते
चाय की प्यालियों को
संग संग सुड़कते।
खिल खिला उठी मैं
महकने लगा था
गुलदान का फूल भी।
खत्म कर दिया था
गिलास के पानी ने
सारा कसैलापन भी।
हजारों कोस दूर
घूम आया था मन
बिना पैर दुखाये ही।

बीजी

करमजीत कौर
एम.आई.जी.–1, हाउसिंग बोर्ड कालोनी, पार्वती किराना के पास, अघनपुर, धरमपुरा,
जगदलपुर–494001, छ.ग.
मो.–9425261429

पहाड़ों में जिस तरह वर्ष भर मौसम ख़ुशगवार हुआ करता है कुछ ऐसा ही हमारे शहर का मौसम हुआ करता था। परन्तु समय ने करवट ली और यहाँ भी पर्यावरण मानवीय क्रियाकलापों से अछूता नहीं रहा। अब गर्मियों में यहाँ का तापमान भी 45–46 डिगरी तक पहुँच जाया करता है। गर्मियों के ऐसे ख़ुश्क दिनों में घर से बाहर निकलना बेहद मुश्किल सा लगता है। पर नौकरी करनी है तो सब कुछ सहना ही पड़ता है। और ज़िन्दगी की हर मुश्किल को सहजता से लें तो सब सरल हो जाता है, ऐसा मेरी बीजी कहा करती थीं।

बचपन से ही पिताजी की अपेक्षा मैंने स्वयं को बीजी के करीब महसूस किया। बेहद कर्मठ व्यक्तित्व। सारा दिन काम–काज में लगी रहने वाली बीजी। कल उन्हें देखा तो मन एक कोना भीग सा गया। बाहर बरामदे में कुर्सी डाले हर आते जाते को देखकर तसल्ली करती हुई बीजी का मन भी शायद भागदौड़ करने का होता है। सोचती हूँ यही तो बीजी हैं जो सारी दोपहरी चहलकदमी करती थकती नहीं थीं। उम्र का ये पड़ाव मानों सबकुछ हाथों से ले उड़ा है। बेहद खुशमिज़ाज़, जितना पहनने ओढ़ने की शौकीन उतना ही खाने पीने की शौकीन। चौबिसों घंटे परिवार और दोस्तों के बीच रची बसी, खिलखिलाती जीवन से भरपूर बीजी।

गर्मियों की चिलचिलाती धूप में स्कूल की ओर दौड़ती मेरी गाड़ी की रफ़्तार से भी कहीं तेज बीजी के विचारों ने मेरे अंदर उथल पुथल मचा दी थी। वक्त कब किसी का साथ देता है वह तो अपनी रफ़्तार से दौड़ता सबकुछ पीछे छोड़ता जाता है। और इसी वक्त ने बीजी का सबकुछ जैसे छुड़ा दिया। डाक्टरों ने मिर्च मसाले, शक्कर, टमाटर जैसी हर चीज जो बीजी को प्रिय थी, उनसे परहेज रखने को कहा। पर बीजी जिस चीज से परहेज नहीं कर सकीं वो थी उनके इर्द–गिर्द घूमती हम सब के सुख–दुख की चिन्ताएं, वे अवसाद के क्षण जो शायद किसी के साथ बाँट नहीं पाती थीं। दो बार माइनर हार्ट अटैक को सहन कर चुकीं बीजी, आज भी जब पूरा परिवार कारों में सवार कभी होटल तो कभी पिकनिक और कभी सैर सपाटे के लिए निकलता तो पीछे नितांत अकेली खड़ी बीजी, शायद वैसा ही दिल पर झटका एक बार फिर से महसूस करतीं।

मेरा स्कूल आ चुका था। विचार एक झटके से मेरे दिल से अलग हो जाते हैं। प्रार्थना के लिए छात्रों की लाईन बनी हुई है। मैं गाड़ी वहीं करके नम आँखों से राष्ट्रगान के लिए वहीं सावधान खड़ी हो जाती हूँ, और फिर उपस्थिति रजिस्ट्रर लेकर बोझिल कदमों से कक्षा की ओर चल पड़ती हूँ। उपस्थिति रजिस्ट्रर को खोलते ही हठात् बीजी का चेहरा मेरे पूरे अस्तित्व में समा जाता है, उपस्थिति लेना भूल फिर बीजी की यादों में गुम होने लगती हूँ।

हम जब पढ़ा करते थे, हमारे स्कूल आने–जाने में बीजी कितनी तत्परता से सहयोग दिया करती थीं। एक कक्षा भी नहीं पढ़ीं बीजी हम सभी को स्नातकोत्तर करा पाईं थीं। कभी भी उन्हें हमारे लिए शाला तक नहीं आना पड़ा था। कभी किसी भी तरह की शिकायत का मौका हमने शिक्षकों को नहीं दिया। बीजी के दिये संस्कारों ने हमें कभी उदण्ड नहीं बनाया। परीक्षाओं के समय हमारे सामने कुर्सी पर चुपचाप बैठी बीजी लाख कहने पर भी सोने नहीं जातीं, कहतीं यदि मैं सो गई तो तू भी सो जायेगी। फिर तेरी परीक्षा की तैयारी कैसे पूरी होगी। और आज.....हम शायद एक रात भी बीजी के साथ जाग नहीं पाते हैं। उन्हें नींद की गोली खिलाकर खुद अलमस्त सो जाते हैं।

मेरी हर जरूरी–ग़ैर जरूरी जिद को पूरा करती बीजी हर समय मेरे आसपास रहतीं। उनके साथ मानसिक और आत्मिक रूप से जुड़ी हुई मैं उनसे दूर जाने की कल्पना मात्र से घबरा जाती। कहा करती ''बीजी आपसे दूर नहीं जाना है मैंने।'' तो बीजी बेहद लाड़ से कहती ''ठीक है तेरी शादी मैं यहीं अपने पास करूँगी।''

और ईश्वर ने मेरी सुनी भी। मेरी शादी नई दिल्ली में हुई पर मैं यहीं बस गई। अपनी बीजी के पास। इन्होंने अपना काम यहीं शुरू कर लिया। सबकुछ मेरी इच्छानुसार हुआ। मुझे ऐसा लगने लगा कि बीजी के पास–पास रहकर भी मैं एकाएक बीजी से बहुत दूर हो गई हूँ। मैं चाहकर भी बीजी को वो खुशियाँ नहीं दे पाई जो उन्होंने मुझे दीं। उनकी तक़लीफ में उनके पास रहना चाहा तो घर अपना सा नहीं लगा, महसूस हुआ शादी के बाद सचमुच घर ही नहीं, घर के लोग भी पराये हो जाते हैं।

आँसुओं से लबालब आँखों को स्टूडेंट की नज़रों से बचाकर उपस्थिति रजिस्ट्रर खोलकर उपस्थिति लेना शुरू करती हूँ।

क्या बात है नरेश बहुत दिनों से अनुपस्थित है, पूछने पर

जवाब मिलता है, उसकी माँ अस्पताल में एडमिट है, अतः वह पिछले पंद्रह दिनों से स्कूल नहीं आ रहा है। हठात् बीजी फिर नरेश की शक्ल में मेरे सामने आ जाती है। पिरीयड समाप्ति की घण्टी बजती है। अफ़सोस स्टूडेंट को आज कुछ नया नहीं समझा सकी। पर एक बात समझ कर आ रही हूँ कि मैं भी बेटा होती तो शायद उनके पास पंद्रह दिन रूकने का वक्त निकाल सकती थी। फिर सोचती हूँ ये सब मन का छलावा मात्र है, बीजी के दो बेटे बीजी के पास ही तो हैं, वे दिन के बारह घंटों में, क्या बारह मिनट भी बीजी को दे पाते हैं ? और बीजी भी बस इतना सा वक्त ही उनसे चाहती है। पर चाहने से क्या होता है, बीजी के बेटों की अपनी जरूरतें हैं। पत्नी और बच्चों के बीच खपते, वे माँ को कहाँ वक्त दे पाते हैं।

वक्त न दे पाना उनकी मजबूरी है और उनका साथ चाहना बीजी की विवशता है। ग़लत दोनों ही नहीं हैं पर मुझे सबकुछ ग़लत क्यों लगता है। बीजी की भीगी पलकें देख मेरी आँखें क्यों नम हो जाती हैं जबकि बीजी के दुखते घुटनों में चाहकर भी तेल की मालिश नहीं कर पाती हूँ। मेरे पति, मेरे बच्चे और मेरी नौकरी क्यों मेरे चारों ओर घेरा बना खड़े हो जाते हैं। कैसी विडंबना है ? पर बीजी के साथ ऐसा कुछ नहीं था, वो अपनी गायों के व्यवसाय के साथ, भैया के लकड़ी के टॉल की पूरी देख रेख के साथ कभी हमें समय न दे पाईं हो, ऐसा तो हुआ ही नहीं। कभी उनकी भीगी आँखों के जरिये उनके अंतर्मन में जाकर पूछना चाहती हूँ, बीजी हम छै भाई बहिनों के लिए आप इतना वक्त कैसे निकाल पाती थीं, हम छै में से एक भी आपके लिए समय क्यों नहीं निकाल पाता है ?

ऐसे अनेक प्रश्नों में उलझी मैं वापस स्टॉफ रूम में आकर निढाल अपनी कुर्सी पर बैठ जाती हूँ। और सोचती हूँ बेटी को प्रश्न पूछने का हक भी कहाँ बनता है। एक बार मायके की दहलीज पार कर प्रश्नोत्तर की सीमाओं से तो परे हो जाती है, एक मूदर्शक की भाँति अपनी बीजी के सुख दुख को आँकने की हैसियत लेकर। दो बूँद आँसू गाल तक यूँ ही ढलक आते हैं। लगता है बीजी का प्यार मैंने अपने आँसुओं में ही समाहित कर लिया है।

वैसे तो साहित्य की तमाम विधाएं महत्वपूर्ण हैं किसी भी विधा को कमतर नहीं आंका जा सकता है परन्तु गद्य और पद्य के बीच संतुलन आवश्यक है। वर्तमान दौर में एक सामान्य सी बात हर ओर सुनने आती है कि व्यक्ति के पास समय ही नहीं है इसलिए उपन्यास के बाद कहानियों और बड़े लेखों का भी दौर खत्म हो चुका है।

क्या यह वास्तविकता है ? नहीं, बिलकुल नहीं। यह तथ्य सत्य नहीं है न ही सत्य के करीब है। जिस बात को लघुकथा में सिर्फ इशारे से दिखाया जाता है उसे भाव सहित कहानी में ही लिखा जा सकता है। छोटी कविताओं और क्षणिकाओं में कही जाने वाली बातें बताये, जाने वाले संदेश; कहानियों और लेखों के माध्यम से ही समझाये जा सकते हैं। समय नहीं है कहकर हम किसी भी विधा का गला घोंट नहीं सकते। अपने चिंतन को कुछ शब्दों में कह सकने की क्षमता लगातार चिंतन के बाद ही आ सकती है अतः कहानी, लेख, पत्र, संस्मरण, डायरी, चिंतन आदि पर कलम चलाने की जरूरत हमेशा बनी रहेगी। नवागंतुक रचनाकारों से विशेषकर आग्रह है कि लघुकथा लिखने से पहले बड़ी रचनाओं को लिखकर खुद को परिमार्जित करें। क्योंकि बड़े लेख अथवा कहानी में लिखते हुए हम बातों की गहराई को समझ कर कम शब्दों में कहना सीख सकते हैं। इसके बाद कम शब्दों वाली विधाओं में श्रेष्ठता हासिल कर सकते हैं।

संबंधों और परिवेश की अंतर्व्यथा, अंतर्द्वंद, अंतर्संबंध कहने के लिए हमें बड़े स्पेस की जरूरत अवश्य ही पड़ेगी। विभिन्न भावों को समेटने के लिए शब्दों के जखीरे की जरूरत पड़ेगी ही। भावों की गहराई में उतरने के लिए विचारों की गहराई आवश्यक होगी।

स्थापित रचनाकारों की कतार में शामिल होने के लिए चिंतन, ममन और स्वयं का परिमार्जन निरंतर चलते रहना होता है। इसके साथ ही लेखन भी!

अतः बस्तर पाति के तमाम लेखकों से आग्रह है अपने लेखन में गद्य रचनाओं को शामिल करें और विशेषकर कहानी और समसामायिक विषयों पर चिंतन। विषय कुछ भी हों परन्तु उनमें मौलिकता हो, नवीनता हो। प्रायः देखने में आता है कि जैसा ट्रेण्ड चल रहा होता है वैसी कविताओं और लघुकथाओं की बाढ़ सी आ जाती है। भले ही लोग वाह–वाह कर देते हैं परन्तु शायद ही कोई उन्हें पढ़ता हो क्योंकि सबकी वही विषय वस्तु, वही भाव, वही विवेचन! क्या आपके पास है अपने समय को बेकार करने का समय ?

सनत कुमार जैन संपादक बस्तर पाति

एक मुलाकात : सुरेन्द्र रावल

'एक मुलाकात' व 'परिचय' श्रृंखला में इस तथाकथित पिछड़े क्षेत्र से जुड़े हुए और क्षेत्र के लिए रचनात्मक योगदान करने वाले व्यक्ति के साथ बातचीत, उनकी रचनाओं की समीक्षा, उनकी रचनाएं और उनके फोटोग्राफ अपने पाठकों के साथ साझा करेंगे।

सुरेन्द्र रावल नाम बस्तर क्षेत्र का जाना पहचाना और अपना सा नाम है। शायद ही कोई ऐसा साहित्यकार होगा जो सुरेन्द्र रावल जी के साथ जुड़कर उनसे कुछ न पाया हो। स्वभावगत श्रेष्ठता तो मिलते ही समझ आ जाती है और साहित्य संबंधी ज्ञान अद्भुत है। कुछ देर उनके साथ गुजारते ही बस्तर के तमाम मूर्धन्य साहित्यकारों के साथ व्यतित किया समय सिलसिलेवार बताना शुरू कर देते हैं। सुनते हुए ऐसा महसूस होता है मानों हम उसी युग में उन सभी के पास पहुंच गये हों। उन्होंने अपनी लेखनी को व्यंग्य की स्याही से भरा है। अपने उत्कृष्ठ मंच संचालन और व्यंग्य पाठ से चर्चित रहे हैं। आज भी वे कार्यक्रमों की पहली मांग होते हैं। इस उम्र में भी वे वर्तमान घटनाओं को ध्यान में रखकर अपना लेखन जारी रखे हुए हैं। अपनी व्यंग्य शैली से एकदम विपरीत शांत रस की कविताओं का लेखन अचरज से भर देता है। अपनी कविताओं और व्यंग्य आलेखों से साहित्य में एक विशिष्ट मुकाम हासिल करने वाले रावल जी सहज, सरल और आत्मीय व्यवहार के चलते हमेशा याद रहते हैं। मैंने उनसे साहित्य से जुड़े विभिन्न संदर्भों पर बात की और उन्होंने बेबाक जवाब दिया। आईये हम सभी उनके विचार जानकर उन्हें समझने का प्रयास करते हैं।

सनत जैन–किसी नये नवेले साहित्यकार को कार्यक्रम का मुख्य अतिथि बनाने से उसका फायदा है या नुकसान?

सुरेन्द्र जी–उसका नुकसान है। उसे व्यर्थ ही भ्रम हो जाता है कि वह मुख्य अतिथि की आसंदी के योग्य है, जबकि यह सच नहीं है!

सनत जैन–किसी 'पहुंच' वाले को साहित्यिक कार्यक्रम की आसंदी देना कहां तक उचित है?

सुरेन्द्र जी–पहुंच वाले को भी आसंदी देना गलत ही क्योकि उसे पहले ही लगने लगता है कि आयोजक मुझसे कुछ स्वार्थ सिद्ध करना चाहता है!

सनत जैन–किसी भी साहित्यिक पत्रिका के संपादक की योग्यता क्या होनी चाहिए?

सुरेन्द्र जी–साहित्य का ज्ञान, साहित्य की समझ, साहित्य में आ रहे बदलाव और साहित्य के उचित सरोकारों से उसे परिचित होना चाहिए!

सनत जैन–साहित्यकार होने के लिए व्यक्ति को कितना पढ़ा लिखा होना चाहिए?

सुरेन्द्र जी–पढ़ा लिखा का आज कोई अर्थ नही रह गया है। उसका भाषा पर अधिकार हो, भावना और संवेदनाओं को शब्दों में पिरो सकने की कला उसमे होनी चाहिए।

सनत जैन–सामाजिक असंतुलन के लिए लेखक जिम्मेदार होता है या फिर संपादक?

सुरेन्द्र जी–मैं तो संपादक को जिम्मेदार मानता हूं, उसे यह ध्यान रखना चाहिए कि वह लेखकों के माध्यम से पाठकों के सामने क्या परोस रहा है।

सनत जैन–साहित्यकार का बेटा साहित्यकार ही बने क्या ऐसा जरूरी है?

सुरेन्द्र जी–बिल्कुल नहीं! आवश्यक नहीं की उसमे साहित्यकार होने की प्रतिभा भी हो।

सनत जैन–साहित्यिक सफलता के मायने क्या होते हैं?

सुरेन्द्र जी–साहित्यिक सफलता उसे ही कहेंगे जहां पाठक उसकी रचनाओं से जुड़ाव महसूस करे। प्रसिद्धि की तो मार्केटिंग की जा सकती है।

सनत जैन–सहित्यकार अपने जीवन में क्या करता है और वह क्या रचता है, क्या दोनों में तारतम्य होना जरूरी है?

सुरेन्द्र जी–दरअसल साहित्यकार जिसे जीवन मे नहीं कर सकता, उसकी झलक उसके साहित्य में आती है, पर उसके जीवन मूल्य या संस्कार उसकी रचना से जुड़ कर ही आते हैं।

सनत जैन–गज़लें अब अपने विषय बदल रहीं हैं, पहले और आज भी शराब व शवाब में डूबी रहती हैं; क्या परिवर्तन जरूरी है? और यह परिवर्तन समय के कारण है या फिर ग़ज़लकारों की कमजोरी है?

सुरेन्द्र जी–ठहरे हुए जल में सड़ांध पैदा हो जाती है। तब नए विषयों को उठा कर लहरों की तरह चलने वाले ग़ज़लकार ग़ज़लों को सार्थक और नए सरोकारों से युक्त बना देते हैं।

सनत जैन–मंचीय कवि और साहित्यिक कवि में क्या अंतर है?

सुरेन्द्र जी–जमीन आसमान का! मंचीय कवि अपनी कविता बेचता है जबकि साहित्यिक कवि उसे प्रसाद बना कर मां भारती के चरणों मे अर्पित करता है!

सनत जैन–व्यंग्य और हास्य में क्या अंतर है?

सुरेन्द्र जी–बहुत बड़ा अंतर है। व्यंग्य एक प्रकार की अन्योक्ति होती है जो किसी विसंगति को अनूठे अंदाज में प्रस्तुत करता है। जबकि हास्य तो सिर्फ हंसाता है, कुछ देता

नही।

सनत जैन–क्या वास्तव में सफल महिला साहित्यकार होने के लिए परिवार नामक संस्था से दूर रहना आवश्यक है?

सुरेन्द्र जी–नहीं! अनेक महिला साहित्यकार अपने पारिवारिक उत्तरदायित्व का पालन करते हुए श्रेष्ठ लेखन करती हैं।

सनत जैन–हर सफल व्यक्ति के पीछे उसकी पत्नी होती है, तो सफल औरत के पीछे कौन होता है?

सुरेन्द्र जी–सफल पुरुष साहित्यकार की तरह सफल महिला साहित्यकार के पीछे भी उसका पूरा परिवार होता है।

सनत जैन–संपादकीय के विषय क्या होने चाहिए, समसामायिक घटनाएं, साहित्य से संबंधित या फिर सामाजिक समस्याओं पर?

सुरेन्द्र जी–समसामयिक घटनाएं नहीं, समसामयिक प्रश्न चिन्ह जो समाज, राष्ट्र और कला के क्षेत्र के होते हैं। पर उसका दृष्टिकोण हर स्थिति में सकारात्मक होना आवश्यक है।

सनत जैन–नये साहित्यकारों के सृजन के कैसे प्रयास होने चाहिए?

सुरेन्द्र जी–उन्हें अधिकाधिक लिखने के बदले कम और सार्थक लिखना चाहिए। और उसे समय पर उस विधा के पारंगत साहित्यकार से परीक्षण करवाना चाहिए।

सनत जैन–क्या उम्र के साथ लेखन में परिपक्वता आती है, या ये जुमला यूं ही उछाला गया है?

सुरेन्द्र जी–परिपक्वता साधना से आती है, इसका उम्र से कोई संबंध नहीं है।

सनत जैन–आप साहित्य की किस विधा में लिखते हैं ?

सुरेन्द्र जी–इसका उत्तर कठिन है। जिस तरह किसी पिता को अपनी सारी संतानें प्रिय होती हैं उसी तरह मुझे भी हर विधा प्रिय है। इन सभी विधाओं ने मेरे लेखन में मेरी पहचान बनाई है।

सनत जैन–क्या कोई राष्ट्रीय साहित्यिक संगठन में जुड़कर ही साहित्य की सेवा कर सकता है?

सुरेन्द्र जी–ऐसा कतई जरूरी नहीं है। जो साहित्य साधक है, साहित्य सेवक है वो कहीं भी सेवा कर सकता है। बल्कि नामी गिरामी संगठन में आजकल चालबाज लोग सम्मान और खुद को बड़ा दिखाने की प्रत्याशा से ही जुड़ते हैं। इनसे अच्छा काम तो स्थानीय संगठन करते हैं।

सनत जैन–साहित्य लेखन में आजकल देखा जा रहा है कि लेखक को देश विरोधी, समाज और संस्कृति विरोधी, मानसिकता बदलने वाला लेखन करने पर मजबूर किया जा रहा है; क्या यह सही है ?

सुरेन्द्र जी–साहित्य का अर्थ होता है समाजहित! जो लेखन हमारे समाज और संस्कृति के विरूद्ध है उसे खारिज किया जाना चाहिए। इसकी जबाबदारी तो लघु पत्र पत्रिकाओं के सम्पादकों की है। उन्हें ऐसा आलेख प्रकाशित ही नहीं करना चाहिए। बल्कि ऐसे लेखकों की कभी भी किसी भी विधा में लिखी रचना को प्रकाशित नहीं करना चाहिए। लघु पत्रिकाओं ने सामाजिक परिवर्तन में अपना बहुमूल्य योगदान दिया है। समाज निर्माण की उनकी महती जिम्मेदारी है। और हां, एक बात और अगर कोई पत्रिका इस तरह की संस्कृति विरोधी है तो उसे खरीदना या चंदा देना देश और संस्कृति के प्रति अपराध है।

सनत जैन–आजकल शासकीय धन के दुरूपयोग से लोग खुद को साहित्यकार बना कर पेश कर रहे हैं। अपने शासकीय पद के बूते कवि बनकर आ रहे हैं; इस बारे में आप क्या सोचते हैं?

सुरेन्द्र जी–आपने कभी ऐसे साहित्यकार को इतिहासपुरूष बनते देखा है? आजतक जितने भी साहित्यकार इतिहास में अपना नाम दर्ज करवाये हैं वे अपनी साधना के बूते न कि शासकीय धन और पद के बूते! हां, ये जरूर है कि हमें ऐसा लगता है कि ये अपने समय में आगे चल रहे हैं पर होता है नहीं। ये सारी हरकतें उनकी मानसिक बीमारी की तरह हैं।

सनत जैन–आकाशवाणी और दूरदर्शन वास्तव में साहित्य के विकास में कितने सहायक हैं ? क्या इनसे नवीन साहित्यकारों को फायदा होता है ? या फिर ये भी सफेद हाथी हैं ?

सुरेन्द्र जी–घुन, सारे गेंहूं में लगी है। किसी एक को क्या दोष दें। जब तक ये विभाग अपनी पुरातन पद्धतियों को नहीं बदलेंगे तब तक इनका अवदान और योगदान अपेक्षित ही रहेगा।

सनत जैन–आजकल खुद को ऊपर उठाने के लिए लोग पत्रिका प्रकाशन करते हैं। पहले लोग संग्रह प्रकाशित करवा कर साहित्यकारों के बीच बांटा करते थे; क्या ये वास्तव में खुद को आगे बढ़ाने में सहायक होता है या फिर सिर्फ झूठी तसल्ली है खुद को बहलाने की?

सुरेन्द्र जी–गजब का प्रश्न है। ये सारे साम–दाम–दण्ड भेद एक महत्वाकांक्षी साहित्यकार को तात्कालिक संतुष्टि दे सकते हैं पर साहित्य में सिर्फ साधना ही स्थापित होती है। ये मां सरस्वती का वरदान कहें या फिर उनके द्वारा स्थापित मर्यादा!

सनत जैन–साहित्य में दलितवाद शब्द का प्रयोग आजकल बहुत किया जाता है। क्या ये फैशन है या फिर साहित्यकार की वास्तविक चिंता ?

सुरेन्द्र जी–एक वाक्य में कहूं तो ये एक छलावा ही है। ये लोग साहित्यकार ही नहीं हैं। इसलिए साहित्य की वास्तविक धारा को यहां वहां मोड़ रहे हैं।

सनत जैन–साहित्यिक पत्र पत्रिकाओं का खर्च किस तरह निकाला जाए? बुक स्टाल वाले तो पैसा देते नहीं हैं, और आजकल पत्रिकाएं सभी को मुफ्त में चाहिए होती है वो भी अधिकारपूर्वक! आपके दिमाग में इस समस्या के लिए कोई उपाय है?

सुरेन्द्र जी–मैंने पहले ही कहा कि वास्तविक साहित्यकार अपनी मेहनत को प्रसाद की तरह बांटता है। इसलिए खुद को डुबाने की क्षमता रखने वाला ही इस ओर अपने कदम बढ़ाये। मुझे नहीं लगता कि आपकी पत्रिका की हजार प्रति के पचास सौ से ज्यादा सदस्य होंगे। जबकि हमारे आसपास के लोग, हमारे दोस्त–यार, रिश्तेदार भी इसके सदस्य बन जाते तो इसका खर्च निकल जाता। हां, ये सारे लोग आपको पत्रिका न देने का ताना हमेशा देंगे। ये हमारे संस्कार में दोष बनकर आ चुका है। लोगों की मानसिकता तो यह है कि वे आपको अपनी पत्रिका से अपना तीन मंजिला मकान बनवाये हो कहेंगे, जबकि वास्तविकता ये होगी कि पत्रिका के न होने से आपके मकान में एक मंजिल और बन जाती।

सनत जैन–साहित्य में मार्क्सवाद क्या बला है? क्या ये साहित्य और समाज के लिए आवश्यक तत्व है?

सुरेन्द्र जी–वास्तव में मार्क्सवाद, मार्क्स के देश के लिए अमृत की तरह था। हमारे देश और मार्क्स के देश की परिस्थितियां अलग हैं। हमारे यहां हमारी संस्कृति और संस्कार से जुड़ा वाद ही सफल हो सकता है। थोपा हुआ विचार कभी भी लाभप्रद नहीं हो सकता। हमेशा एक ही चश्में से देखना, एक जैसा लिखना और एक जैसे लिखे को ही स्वीकृति देना, साहित्य का बेड़ागर्क करने की तरह है। साहित्य तो इंसान की वास्तविकता से ओतप्रोत मानसिक स्थिति का शब्दांकन है। ये कैसे बनावटी हो सकता है! समाज के एक वर्ग को नकारात्मक घोषित करना और एक वर्ग को निरीह बताना, सामाजिक ढांचे को नुकसान पहुंचाने का काम है।

सनत जैन–अंत में एक सवाल और। बरगद साहित्यकार और नवोदित महत्वाकांक्षी साहित्यकार दोनों के बीच आप कैसा रिश्ता देखते हैं?

सुरेन्द्र जी–ये दोनों एक ही थैली के चट्टे बट्टे हैं। दोनों ही साहित्य का नुकसान करते हैं। इस तरह के साहित्यकारों को हम लोग ही प्रश्रय देते हैं। हम इनको क्यों अग्रपंक्ति में बैठाते हैं? हमारी दी गई मान्यता ही इनका हौसला होती है।

सनत जैन–आदरणीय आपका बहुत बहुत धन्यवाद, जो आपने अपना बहुमूल्य समय और बहुमूल्य विचार हमारे पाठकों को दिया। आपकी बातों से निश्चय ही पाठकवर्ग को एक दिशाबोध होगा। अपने लेखन को उत्कृष्टता की ओर लेकर जायेंगे। बस्तर पाति परिवार की ओर से आपके उत्तम स्वास्थ की कामना के साथ उज्ज्वल भविष्य की शुभकामनाएं।

काव्य–सुरेन्द्र रावल

वह वृक्ष

वह वृक्ष,
जिसमें बनाए थे
पंछियों ने घोंसले,
वह वृक्ष,
अब बदल गया है।
वह पहले सा नहीं रहा।
उसकी छाया में अब,
धूप लगती है।
उसकी पत्तियां, शाखाएं,
अब रक्षा नहीं करतीं।
घुस आती है, बाज वक्त,
घोंसलों में,
और झांक लेती हैं
उसकी आबरू।
वे हवाएं,
जो पत्तों
और शाखाओं के बीच से
निकलकर बन जाती थीं–
शीतल बयार,
और करते हुए मर्मर ध्वनि,
लोरियां गाती थीं,
दुलराती थीं।
अब, उनकी आवाज में–
आ गई है कर्कशता।
अब वे दुलराती नहीं,
डांटती हैं।
अब, बहुत देर से ही सही,
ज्ञात हो गया है मुझे,
कि सुरक्षित नहीं थे।
कभी भी–
इन पंछियों के घोंसले।
उन्हें सिर्फ खुशफहमी थी–
अपने सुरक्षित होने की।
इन तूफानी हवाओं में बैठे
पंछियों के बच्चे
रोते हैं, कलपते हैं, डरते हैं।
उनकी मांएं भी सोचती हैं–
मुसीबत में डाल दिया हमने
अपने बच्चों को।
इससे तो अच्छा था–
वह छोटा सा घर,
जिसके झरोखों
और रोशनदानों में,
खेल–खेल में ही
बंध जाते थे नीड़।
वह वृक्ष अब,
वैसा वृक्ष नहीं रह गया है,
जैसा पहले था।
बहुत बदल गया है–
वह वृक्ष।

व्यंग्य–सुरेन्द्र रावल

अंग्रेजी की जूठन

सुना है, अंग्रेजों का भारत से जाने का कोई इरादा न था। कभी कभी मेहमान को मेजबान का घर, मेहमान नवाजी इतनी अच्छी लगने लगती है कि उसे वहीं टिक जाने का मन करता है। यही बात अंग्रेजों के साथ थी। मुफ्त की जमीन पर मुफ्त में मिले डाकबंगले, शिकारगाह, घने जंगल, गोलियों से मरने को आतुर जंगली जानवर, मुसाहिबों को यस सर–यस सर कहती टोली, मजदूरों किसानों पर हंटर बरसाते रहने का आनंद, ये सारे सुख उन्हें लौटने पर इंग्लैण्ड में कहां नसीब होते।

उधर इण्डिया बिगड़ गया था। अंग्रेजों की किताबें पढ़ पढ़ कर उसे भी आजाद होने की इच्छा होने लगी थी, फलस्वरूप आये दिन अहिंसक जुलूस, गगनभेदी नारे और बाद में भारत छोड़ो आंदोलन–इन सबने अंग्रेजों का मूड खराब कर दिया। इन अहिंसक प्रदर्शनकारियों पर जब जब उन्होंने लाठियां और गोलियां चलाई तो उन्हें अपनी ही पार्लियामेंट में जवाब देना मुश्किल हो गया। जब प्रदर्शनकारी सिर्फ नारे लगा रहे थे तब तुमने लाठी, गोली क्यों चलाई–ऐसे प्रश्नों ने उनका जीना हराम कर दिया था तो फिर न चाहते हुए भी उन्हें भारत छोड़ना पड़ा। उन्हें याद आया कि सुदूर इंग्लैण्ड में उनका भी कोई अपना घर है। वे गये तब बड़ी जल्दबाजी में गये। उनका बस चलता तो पूरी बीसवीं सदी वार्ताओं बैठकों में गुजार देते।

बड़ी जवाबदारी में जाते समय जैसे मेहमान का चश्मा छूट जाता है, गीला चड्डी बनियाइन अलगनी पर सूखती रह जाती है, छाता पता नहीं किस कोने में पड़ा है, जुराबें बाथरूम में रह गई–ऐसा ही अंग्रेजों के साथ हुआ। यहां तक कि मेकाले द्वारा प्रेषित अंग्रेजी भी भारत में छूट गई, फिर इस पीछे छूटी अंग्रेजी की बंदर बांट हुई। बहुत से लोगों के हाथ लगा –गुडमार्निंग, गुड इवनिंग, सॉरी, थैंक्यू, प्लीज और ओके।

उनके अच्छे अच्छे वेदवाक्य भी यहीं रह गये, जैसे इवरी थिंग इज फेयर इन लव एण्ड वार, प्रेम और युद्ध में सब जायज है। उनके जाने के दस बीस बरस बाद नेहरू, गांधी, पटेल, बोस की पीढ़ी के निकल जाने के बाद बिहार, उत्तरप्रदेश जैसे प्रखर बुद्धि वाले राज्यों के नेताओं ने इस वेदवाक्य का विस्तार कर उसमें राजनीति भी जोड़ दिया। इवरी थिंग इज फेयर इन लव, वार एण्ड पॉलिटिक्स। किशोर और युवा विद्यार्थियों ने उसमें परीक्षा भी जोड़ दिया। परीक्षाओं के दिनों में आपने देखा होगा छोटे बड़े अखबारों में चार–चार मंजिला विद्यालयों की हर खिड़की पर लटक–लटक कर भीतर परीक्षार्थियों तक आये हुए प्रश्नों के उत्तर पहुंचाये जा रहे हैं। वे खिड़कियां जैसे हवा आने के लिए नहीं, नकल आने के लिए बनाई गई हों। हमने अखबारों में ऐसी घटनाओं के लिए की गई कार्यवाही के बारे में नहीं पढ़ा। जाहिर है –''बच्चे हैं, नादान हैं, शरारत तो करेंगे ही'' ऐसे वाक्यों द्वारा पूरे वात्सल्य भाव से उसे बाल सुलभ चंचलता मान लिया जाता है। अब उस वेदवाक्य में प्रेम, युद्ध, राजनीति के साथ ही परीक्षा भी जुड़ गया जो पूरे देश में वायरल हो गया। ''इवरीथिंग इज फेयर इन लव, वार, पॉलिटिक्स एण्ड एक्सामिनेशन।''

बाद में देश को यह सूझा कि अब इसे पूर्ण कर देना ठीक है–इवरीथिंग इज फेयर इवरीवेयर। सर्वत्र सबकुछ जायज है।

उधर परिक्षाओं में सबकुछ जायज होने के परिणामस्वरूप देश को विचारार्थ एक नया मुद्दा मिला। ''शिक्षा में गुणवत्ता की कमी'' चूंकि यह समस्या देशव्यापी थी अतः विचारकों ने इसे समस्या न मान कर देश में तेजी से हो रहे विकासोन्मुख परिवर्तन का एक अनिवार्य लक्षण मान लिया।

अंग्रेज अपने साथ इतिहास भी लाये–''भारत का इतिहास''। उन्होंने भारतीय बच्चों को रटा दिया कि आर्य बाहर से आये हमलावर थे जिन्होंने देश के उत्तरी भाग में काबिज होकर भारतीयों को दक्षिण की ओर ढकेलने में कामयाब हो गये। इस प्रकार उन्होंने उत्तर भारत और दक्षिण भारत को अलग अलग बताकर एक विभाजक रेखा खींच दी।

उन्होंने यह भी बताया कि भारत का इतिहास ज्यादा से ज्यादा पांच हजार वर्ष का है। रामचंद्र जी का जन्म ईसा मसीह से लगभग डेढ़ हजार वर्ष पूर्व हुआ और कृष्ण जी का उनके भी पांच छै सौ साल पहले। इस प्रकार विद्यार्थियों को भारत के इतिहास का पाकेट एडिशन उपलब्ध हो गया।

अंग्रेजों ने यह भी बताया कि संस्कृत एक मृत भाषा है। यह कभी लोक व्यवहार में नहीं आई। उन्होंने इस बात पर भी खेद प्रकट कर दिया कि पता नहीं कैसे संस्कृत के अनेक शब्द ग्रीक, लेटिन, अंग्रेजी आदि में कहां से घुस गये।

उनके इतिहास से ही हमें जर्मनी इटली आदि संबंधित शब्द फासीवाद, नाजीवाद, हिटलरशाही जैसे शब्द मिले जिन्हें देश के निष्क्रिय राजनीतिक दलों ने हाथों हाथ लपक लिया जो उन विरोधियों द्वारा सरकार पर छोड़े जाने वाले प्रक्षेपास्त्र बन सकें। उन्होंने गोयबल्स के उस सूत्र वाक्य पर भी प्रकाश डाला कि झूठ यदि लगातार दोहराया जाय तो वह सच बन जाता है। ये भारतीय राजनीति के लिए सिद्ध मंत्र सिद्ध हुए।

अंग्रेजों ने भारत को मदारियों, बाजीगरों तथा जंगलियों का देश बताया जो मंत्र–तंत्र, टोने–टोटके में फंसे थे। वे इस

देश को अपने जैसा सभ्य और सुसंस्कृत बनाने को कृतसंकल्प थे। इसके पहले कि वे अपना काम पूरा कर पाते, गांधी, जवाहर, पटेल, सुभाष जैसे लोग बीच में आ गये और हमारे उन शुभचिंतकों का हमें सभ्य बनाने का अधूरा सपना लेकर ही इस देश से विदा होना पड़ा।

सामान्य जनजीवन में भी अंग्रेजों और अंग्रेजी का अच्छा प्रभाव पड़ा। लोग लंगोटी, धोती, कुर्ता छोड़ सभ्य कहलाने के लिए शर्ट, पेन्ट, टाई, कोट का उपयोग करने लगे। उन्होंने भारत के गर्म मौसम का भी लिहाज न किया।

बच्चों ने भी सॉरी, थैंक्यू, प्लीज, ओके, एक्सक्यूज मी आदि का प्रयोग सीख कर अपने जीवन को सरल बना लिया अब तो दुष्कर्म में पकड़ा गया आरोपी भी थानेदार के यह कहने पर कि तुम्हें शर्म नहीं आती दुष्कृत्य करते।, आरोपी 'सॉरी' कह देता है। थानेदार भी उसे लुक्खा समझकर मामले को दर्ज न कर उसे समझाइश देता है और आरोपी उसे समझकर 'थैंक्यू अंकल' कहकर निकल लेता है।

बप्पा, बाबूजी, अम्मा, मां, बुआ, चाची जैसे शब्दों का प्रयोग अब देहातीपन माना जाता है। इनके स्थान पर डैड, डैडी, पप्पा, मम्मी, आंटी, अंकल जैसे शब्दों का प्रयोग करना सही माना जाता है।

शहरों में सबसे अधिक प्रचलन में है प्लीज, सॉरी और थैंक्यू। अमीर बाप का अमीर बेटा भी अपने बाप से 'प्लीज' कहकर आठ–दस लाख की कार ऐंठ लेता है। उच्च मध्यम वर्ग का बेटा 'प्लीज' कह कर साठ–सत्तर हजार की बाइक पा लेता है। और निम्न वर्ग का बेटा 'प्लीज' कहकर डेढ़ सौ, दो सौ रूपये वाला पिज्जा बर्गर आदि का मजा ले लेता है। मैं चिन्तित हूं बोबो, बासी, ठेठरी खाने वाले बच्चों के लिए जो अब मैगी, चाउमिन, कुरकुरे खाने लग गये हैं। लाई, चना, मुर्रा उन्होंने बहुत पीछे छोड़ दिया है।

वीरानियां

स्वर्ण लूटा क्षितिज का, डाकू तिमिर ने।
रंग बदला गिरगिटी आकाश का भी।
इंद्रधनुषी सांझ तम में खो गई है,
अब भरोसा टूटता है, सांस का भी।।

खो रही श्रद्धा, बिखरती आस्थाएं।
मर चुकी इन्सानियत, रोती वफाएं।
कौन, किस पर, क्यों करे विश्वास ? अब तो,
घुट रही है सांस, कैसे गीत गाएं।।

अब नहीं विश्वास, खिलती डालियों का।
अब नहीं विश्वास है, किलकारियों का।
कौन जाने कब, बदल जाये ये सूरज,
अब नहीं विश्वास, इन जलते दीयों का।।

चांद छलिया, बेवफा रंगी– सितारे।
कागजी फूलों के हैं ये रंग सारे।
कौन कहता– ओस गिरना मोतियों सा,
प्रकृति के सब खोखले दिलकश नजारे।।

अब नहीं मां के हृदय का प्यार सच्चा।
राखियों में जो लगा, वह तागा कच्चा।
खून है तैयार, गरदन काटने को,
हो गया है आज, हर इंसान टुच्चा।।

खून का सिन्दूर पर, क्यों शक हुआ है ?
बन गई अभिशाप–सी, क्या हर दुआ है ?
गेह की छत, नेह से छाई मगर अब,
एक ही बारिश में हर कोना चुआ है।।

अब भरोसे गर्म वादों के मिटे हैं।
अब भरोसे पाक यादों के मिटे हैं।
बेवजह बिछतीं रही अपनी बिसातें,
वक्त की शतरंज के मोहरे पिटे हैं।।

प्यार की वीरानियों में हम पले हैं।
जिन्दगी की लाश को ढोये चले हैं।
खून अरमानों का दे, जिसको जलाया,
उस दीये से हाथ अक्सर जले हैं।।

व्यंग्य–सुरेन्द्र रावल

मेरी सड़क

मुझे लगातार लग रहा है कि मेरी सड़क के प्रति पुरातत्ववेत्ताओं की उपेक्षा कोई सोची समझी चाल है, उन्हें जो चौंकाने वाले ऐतिहासिक नतीजे निकालने थे, वे नहीं कर पाए। मेरी सड़क पुरातत्ववेत्ताओं की इसी उपेक्षा के कारण भारतीय इतिहास का एक महत्वपूर्ण पृष्ठ बनने से वंचित रह गई।

इस सड़क की लम्बाई लगभग दो किलोमीटर है इसके अंतिम छोर पर मकान है। मुझे अपनी जिन्दगी को खतरे में डाल रोज इस सड़क से गुजरना पड़ता है। वो मेरा मकान है। सौभाग्यवश मैं अभी तक गुजर जाने से बचा हुआ हूं।

मैं इतिहास का छात्र रहा हूं, मुझे पूरा विश्वास है कि जब औरंगजेब की फौज दक्षिण के राज्यों पर जीत का परचम फहराने निकली थी, वह इसी मार्ग से गई होगी। मेरे विश्वास का आधार यह है कि उसके हजारों घुड़सवारों के यहां से निकलने के कारण ही सड़क पर इतने बड़े बड़े गड्ढे बन सकते थे। पी.डब्ल्यू.डी. या उनके पसंदीदा ठेकेदारों को सड़क बनाने के ठेके मिलते हैं, गड्ढे बनाने के नहीं, अतः गड्ढे उनकी रचनाएं नहीं हो सकतीं।

मैंने अन्य विकल्पों पर भी विचार किया 'शोध का काम गंभीर होता है'। मैंने अंतरिक्ष विज्ञान के दफ्तरों में तारे गिनने और उनके मध्य की दूरियों का अनुमान लगाने वाले अंतरिक्ष विज्ञानी मित्रों से भी पूछा कि गत् हजारों वर्षों में इधर उल्कापातों की कोई संभावना या जानकारी क्या उनके पास है? उन्होंने नकार दिया बल्कि हंस दिये। क्या एक ही सड़क पर इतने सुव्यवस्थित ढंग से उल्कापात संभव है ? नहीं, कदापि नहीं। अपना संदेह दूर करना मेरा शोधोचित कर्तव्य था। मैं उधर से निश्चिन्त हुआ। फिर मुझे ज्ञात हुआ कि केशकाल के पास कुछ टूटी हुई मूर्तियां मिली हैं, जरूर यह औरंगजेब के कुछ दुष्ट सैनिकों की करतूत रही होगी। क्योंकि जहां तक मेरी जानकारी है, औरंगजेब एक धर्मनिरपेक्ष बादशाह था। उसने हिन्दू मराठा राज्यों और दक्षिण के शिया मुस्लिम राज्यों पर आक्रमण में कोई भेदभाव नहीं किया। और मैं ये भी मानता हूं कि औरंगजेब एक धार्मिक बादशाह था, शाही खजाने का एक धेला भी खुद पर खर्च नहीं करता था।

मैंने जिन पुरातात्विकों के समक्ष अपने उपरोक्त विचार रखे, उन्होंने पुरातात्विक संस्कारों के अनुसार गंभीरता ओढ़ ली। उन्होंने नॉन कमिटल स्टेटमेंट दिया कि–आपके विचार सही भी हो सकते हैं। उन्होंने सड़क के हर छोटे बड़े गड्ढों को वात्सल्यपूर्ण दृष्टि से देखा। गड्ढों की मिट्टी खंरोच कर भी देखी।

अब इन बातों की भनक लोक निर्माण विभाग और नगरपालिका को भी लग गई। उन्होंने तत्काल गेंद लोक निर्माण विभाग के पाले में डाल दी। लोक निर्माण विभाग हर काम फूंक फूंककर करता है क्योंकि कभी–कभी वह दूध का जला होता है। वहां अफसरों ने बुद्धि दौड़ाई कि भगवान न करे कहीं यह सड़क ऐतिहासिक विरासत सिद्ध हो गई तो विभाग को लेने के देने पड़ जायेंगे। एक अलिखित आदेश निकल गया – कोई उन गड्ढों को पाटने की कोशिश न करे। वैसे उन्होंने सड़क के निर्माण का इस्टीमेट भी पास करवा लिया पर पुरातत्व का वास्ता देकर वे 'वेट एंड सी' के आजमाए प्रचलित तरीके पर रूक गये।

बहुत सोचता हूं तो कई बार मुझे लगता है यह सड़क बनाई ही नहीं गई है, बल्कि खोद कर निकाली गई है। फिर पता नहीं क्यों काम रोक दिया गया। शायद इसलिए बस्तर में राम वन गमन का मार्ग भी इन दिनों ढूंढा जाने लगा है। शायद किसी साम्प्रदायिक तनाव की आशंका से काम रोका गया होगा।

अपने मुहल्ले के प्रतिभाशाली बच्चे अब दो गुट बनाकर शर्त भी लगाने लग गये हैं कि बताओ पूरी सड़क का क्षेत्रफल अधिक है या गड्ढों का।

मैं गत पचास वर्षों से इस सड़क को जैसे का तैसा देख रहा हूं। सड़क बीचों बीच से अनेक सेठों के निजी गंगोत्रियों से निकली धाराएं दूर–दूर तक बहती रही हैं। कुछ पुराने लोग नाक भौं सिकोड़ते गंदगी की इस पावन धारा को कूदते फांदते रास्ता तय करते हैं।

सुना है यातायात विभाग वाहन चाल हेतु ली जा सकने वाली परीक्षा के साधनों की कमी के चलते यह भी सोचने लगा है कि क्यों न वाहन चालन के नये लाइसेंस जारी करने की परीक्षा इसी सड़क पर ली जाये। जो सकुशल निकल गया उसे लाइसेंस दे दिया जाए। और जो सकुशल नहीं निकल सका उसके समुचित उपचार की व्यवस्था की जाए। पर यह सब सुना है पक्का पता नहीं। यातायात प्रभारी अधिकारी मेरे मित्र हैं, कभी उनसे पूछुंगा।

आश्चर्य यही है कि इसी सड़क पर सबसे ज्यादा आवाजाही होती है। नगर में कोई अन्य ऐसी सड़क ही नहीं जिस पर ट्रक, बस, कारें, रिक्शे, बाइक्स, बैलगाड़ियां, सायकिल और ढेरों ढेरों पशुओं और मनुष्यों के झुंड सुबह से शाम तक चलते हैं। इतनी वैरायटी नगर के किसी दूसरे मार्ग में नहीं। मेनरोड पर रहने वाले मेरे दुश्मन दोस्त घृणावश इसे गली कहते हैं जबकि कसम भगवान की यह सड़क है। सौ फीसदी सड़क। इसे गली कहने पर सुना दो गुटों में मारपीट भी हो गई थी।

काव्य–सुरेन्द्र रावल

मेहनतकश का रन्दा

खर्रस खर–खर, खर्रस खर–खर
मेहनतकश का रन्दा चलता है।
जब भी यह चलता है,
सारी उबड़ खाबड़,
विषम, असमतल सतहों को
समतल करता है।
इसी सतह पर
कहीं महासागर है गहरा।
इसी सतहपर खड़ा हिमालय,
घूर घूर कर देख रहा है।
कोई कहीं बढ़ने न पाए,
अपनी नाजायज कोशिश से।
देता है यह रन्दा पहरा।
रन्दा सब देखा करता है
क्यों किसान का रक्त
पसीना बन बहता है।
वज्र सरीखा तन गल–गलकर,
सब सहता है।
उधर तिजोरी का लोहा
मजबूत हो रहा।
किसकी मेहनत के दानों ने
शक्ल बना ली सिक्कों की।
क्यों मजूर की बीड़ी की
बुझ रही चमक में,
और ढल रही मय में ठेकेदारों की
अंतर होता है।
क्यों शराब का बेटा
बीड़ी की बेटी लाज लूटकर
रात चैन से सो पाता है ?
रन्दा सबकुछ देख रहा है।
कितना अंतर,
गोल, गुलाबी, स्वस्थ, चमकते, मुस्काते
चेहरे से होता, उन चेहरों का
बुझे बुझे से खड़े हुए जो
उस कतार में,
लगी हुई जो राशन,
मिट्टी तेल बेचती दुकानों में।
रन्दा सबकुछ देख रहा है।
सूखी रोटी, बर्तन में चिपके दानों से
बिरयानी, शाही कवाब या मुर्ग–मुसल्लम–
का कितना होता है अंतर ?
कितना अंतर–
टेंट बंधी मजदूरी से,
मेजों के नीचे हौले हौले
सरक रहे नोटों के बंडल में है होता।
लोकतंत्र के तथाकथित उस मालिक के
सूखे चेहरों, भूखे पेटों
या तार–तार हो चुके वस्त्र से
'जन–सेवक' के लाल गुलाबी चेहरे,
चरबी की परतों में,
दमक रहे लकदक कपड़ों से,
बिखर रही मुस्कानों का यह फर्क,
सभी कुछ देख रहा है।
रन्दा सबकुछ देख रहा है।
जैसी भी हो सतह,
इसे समतल करना है।
कांटे–कंकड़, ऊबड़–खाबड़,
विषम दूरियां, फर्क सभी कुछ,
सभी सामने,
मिलजुलकर आ जाएं तो भी,
नहीं किसी से भी डरना है।
वक्त आखिरी है–यह अवसर!
सबको समतल कर देना है।
पैनापन या धार बचाए रखकर ही यह
मेहनतकश का रन्दा चलता।
खर्रस खर–खर, खर्रस खर–खर।

समय की पहचान

सूरज को हथेलियों से मत ढांको।
हवा को मुट्ठियों में मत बांधो।
खुशबू को तहखाने में कैद मत करो।
इतिहास को दावत मत दो।
सूरज, जला देगा तुम्हारी हथेलियां।
हवा की जगह,
तुम्हारी मुट्ठियों में–
रह जायेगा सिर्फ शून्य।
खुशबू–
तहखानों के भारी कीलदार–
दरवाजों को तोड़कर,
निकल जाएगी बाहर।
इतिहास उलट कर रख देगा–
तुम्हारी डायनिंग टेबल।
मेरे बंधु!
पहचानो– समय की नजाकत।
सुनो, आकाश में गूंजते शंखनाद को।
सोच लो,
कहीं तुम्हारे भेजे स्वार्थ के फड़फड़ाते बाज
तुम्हारी ही बोटियां
नोचना न शुरू कर दें
इसलिए कहता हूं–
समय को पहचानो।
परिस्थितियां तुम्हें नचा सकती हैं।
सिफ, समय की पहचान ही तुम्हें
बचा सकती है।

कुछ नहीं

चालाक टोपियां–
बोलती हैं,
खूब बोलती हैं।
करती कुछ नहीं।

हवा भरा खोखला सूट,
बोलता है,
खूब बोलता है।
सुनता कुछ नही।

अबोध धोतियां–लंगोटियां,
सुनती हैं सहती हैं।
सिर्फ सुनती और सहती हैं।
समझती कुछ नहीं।

गूंगी कलमें,
सुनती हैं,
सहती हैं,
समझती हैं
बोलती कुछ नहीं।

काव्य–सुरेन्द्र रावल

परकीया

अर्थहीन शब्दों की भीड़ में,
जैसे, अभिव्यक्ति खो जाती है कहीं,
वैसे ही,
अलिखित नाटकों के
अनूठे पात्रों के बीच,
खो जाता है,
मेरा चिरपरिचित चेहरा!
परेशान होकर ढूंढता हूं।
बड़ी मुश्किल से मिलता है कमबख्त,
किसी आलीशान बंगले के बाहर–
तैनात अलसेशियन से बातें करता हुआ।
नहीं पहचान पाता इस चेहरे को,
क्योंकि इस पर,
तुम्हारी गर्म रोटियों के दाग,
पीढ़ियों से संजोई हया का–
पानी छू छूकर,
फफोले बनकर उभर आए हैं।
चेहरा– जिसपर चिपकी हैं–
वे मुस्कानें,
जो अनुगृहित हैं तुमसे।
मुस्कानें और फफोले।
एक ही तो बात है।
और तो और,
अब तो अपनी कमीज की जेब में चिपकी,
अपनी कलम भी,
मुझे देने लगी है धोखा।
वह सोचती तो है मुझ जैसा,
पर लिखती है–
जैसा तुम चाहते हो।
मुझसे अधिक तुम्हारी नमक हलाल
हो गई है मेरी कलम,
जो मुझये नमक हरामी कर,
तुम्हारी ही हो गई है परकीया।
कलम यदि सच बोल सके
तो बताएगी तुम्हें
कि सदियों की ईमानदारी का खुमार लिए,
बेईमान हो जाना
कितना रोमांचकारी होता है।
होता है कितना क्रांतिकारी–
पुरानी लीक को छोड़ने का गौरव।
कभी कभी सोचता हूं मैं,
कि बदल लूं कलम।
फेंक नहीं सकता,
क्योंकि पिता ने वसीयत में
बड़े प्यार और विश्वास से,
छोड़ी थी यही इकलौती।
बेचूंगा भी नहीं,
क्योंकि दाम हर पुरानी चीज के
आधे ही मिलते हैं–
आस्थाओं से लेकर गांधी तक के।
नई कलम खरीदने में
लगेंगे तिगुने दाम
तिगुनी कीमत–
एक कलम की,
एक कलम के विज्ञापन की
और एक कलम की आजादी की।
रहने दो,
नहीं बेचूंगा।
और न नई खरीदूंगा।
हुआ ही क्या है इसे ?
निब भले ही घिस गया है,
पर 'सॉफ्ट' तो चलता है।
नई निबों वाली नई कलमें तो
फाड़ने लगी हैं कागज इन दिनों।
नहीं भाई नहीं!
कागज फाड़ने का साहस नहीं है मुझमें।
तो फिर ?
क्या बदलनी होगी–
अपनी लिखावट ?
अपने हस्ताक्षर ?
क्योंकि चेहरा तो
पहले ही बदल दिया है यारों ने।

काव्य संग्रह 'काव्य यात्रा' की समीक्षा–सनत कुमार जैन

सुरेन्द्र जी की कविता में.....

कविता लिखते वक्त कवि क्या सोचता है और पढ़ते वक्त पाठक उसे पढ़कर क्या समझता है ये दोनों विषय जुदा से महसूस होते हैं। काव्य के गुरूघंटालों ने इनके नियम अपने –अपने अनुसार गढ़े हैं। परन्तु कवि की भावनाओं को पाठक ठीक से समझ ले यही सही काव्य होता है। ये बात अलग है कि सौन्दर्य में वृद्धि के लिए कवि तरह तरह के प्रयोग करता है।

सुरेन्द्र जी की कविताएं अपने लेखकीय मन को पाठक तक पहुंचाने में सफल हैं। पाठक, सुरेन्द्र जी की कविताएं पढ़कर आनंदित होता है क्योंकि उनमें उसके अपने हृदय की पीड़ा और उसके मन का संघर्ष है। अपनेपन से भरी नहीं बल्कि अपने मन से भरी सुरेन्द्र जी की कविताएं पाठक को यूं ही आकर्षित नहीं करती हैं। आप उनकी 'परकीया' कविता ही देखिए।

कलम के मालिक के अंतर्दंद्व को किस बखूबी चित्रित करती है। उसके मन में ना–ना प्रकार के विचार आते हैं और वह अपने नैतिक संस्कारित मन के सहारे लगातार लड़ता रहता है उन प्रश्नों के जवाब देता जाता है। व्यंग्य का पुट लिए लिखी ये कविता कहती है कि–

कि सदियों की ईमानदारी का खुमार लिए
बेईमान हो जाना, कितना रोमांचकारी होता है।

फिर यही कविता कहती है कि

निब भले ही घिस गया है
पर 'सॉफ्ट' चलता है।

अपनी बात में व्यंग्य पैदा करने के लिए क्या बिम्ब बनाया है देखिए। ऐसे अंदाज ही पाठक तक अपनी बात आसानी से पहुंचाने में सहायक होते हैं।

किसी आलीशान बंगले के बाहर–
तैनात अलसेशियन से बातें करता हुआ।

अपनी एक और कविता 'मेहनतकश का रन्दा' कविता में उन्होंने रंदे के चलने से होने वाली आवाज को प्रयोग में लाया है– खर्रस खर–खर, खर्रस खर–खर!

अपनी कविता में शब्दों से ध्वनि पैदा करने का ये हुनर बहुत कम कवि प्रयोग में लाते हैं। रंदे की आवाज के साथ पाठक और ज्यादा अपनत्व के साथ कविता के मर्म से जुड़ जाता है। वैसे भी छत्तीसगढ़ में छत्तीसगढ़ी बोली में जो बातचीत होती है उसमें ध्वनि को बात–बात में प्रयुक्त किया जाता है। उदाहरण स्वरूप देखिए– भुने चने खाते वक्त अगर एक ठुर्रू चना आपके दांत में आ जाये तो वो जिस तरह से दांत के सहारे टूटता है उसकी आवाज को कहते हैं 'कड़कड़देनी'!

रंदे की आवाज से अपनी कविता को पढ़ने के लिए पाठक को आकर्षित करना और फिर अपनी बात रखना ये भी एक कला है जिसमें सिद्धहस्त होना एक कवि के लिए आवश्यक है।

इस कविता में सुरेन्द्र जी बता रहे हैं कि मेहनतकश यानी मजदूर के सामने बहुत कुछ हो रहा है वह सब कुछ देख भी रहा है। शराब का बेटा, बीड़ी की बेटी, मेहनत के दानों ने शक्ल बना ली है सिक्कों की, आदि प्रतीक बिम्ब अद्भुत हैं जो एक वर्गविशेष को जता रहे हैं।

मेहनतकश वर्ग के सभी लोगों का आह्वान करते हुए कवि कहते हैं कि सबकुछ असमानता हट जायेगी अगर तुम सब एकसाथ विरोध करोगे, एक हो जाओगे तो। वर्गभेद, शोषण खत्म हो जायेगा। अपने विरोध को एक साथ करना है उसे धार देकर तैयार रखना है। परिस्थितियां बदलेगीं जरूर।

समय को पहचानो–कविता में कवि इंसान के दुस्साहस के परिणाम भुगतने के लिए आगाह कर रहा है।

सूरज को हथेलियों से मत ढांको।/हवा को मुट्ठियों में मत बांधो।/खुशबू को तहखाने में कैद मत करो।/इतिहास को दावत मत दो।/सूरज, जला देगा तुम्हारी हथेलियां। /हवा की जगह,/तुम्हारी मुट्ठियों में–/रह जायेगा सिर्फ शून्य।

सच भी तो है वर्तमान दौर में इंसान खुद को प्रकृति से बढ़कर समझने लगा है। अपनी हरकतों से खुद को भगवान के समकक्ष मान चुका है। उसकी इसी हरकत को मद्देनजर रखकर कवि ने कहा है कि औकात में रहो वरना वजूद ही मिट जायेगा।

आपकी प्रतीकों के माध्यम से अपनी बात कहने की शैली अद्भुत है। प्रतीक भी ऐसे चुनते हैं कि आपकी बात एक ही पल में समझ आ जाती है। आपकी 'कुछ नहीं' कविता में आपने प्रतीकों के माध्यम से सटीक बात पहुंचाई है। चालाक टोपियां, हवा भरा खोखला सूट, अबोध धोतियां और मौन कलम; समाज के विभिन्न लोग हैं जिनके जीवन आपस में संबंधित हैं और वे एक दूसरे को प्रभावित करते हैं। ये बातें सीधे सीधे वर्ग का नाम लेकर भी कही जा सकती थीं। जैसे चालाक टोपियां यानी नेतागण, हवा भरा खोखला सूट यानी नौकरीपेशा वर्ग। परन्तु उस वक्त ये बात उतनी मजेदार और आकर्षक नहीं लगती। कविता की ताकत अमिधा नहीं बल्कि लक्षणा और व्यंजना होती है। और इसमें निपुण हैं श्री सुरेन्द्र रावल जी। हर बात को आप प्रतीकों के साथ यूं कहते हैं कि आप उनके कथन को पढ़े बिना उसका अर्थ समझ ही नहीं सकते। उनके काव्य संग्रह 'काव्य यात्रा' की तमाम कविताएं इसी तरह से लिखी गईं हैं। इसमें एक खास बात और है कि ये प्रतीक व्यंग्यात्मक शैली में लिए गये हैं, जो पाठक को कविता भूलने ही नहीं देते।

रजनी साहू 'सुधा'
मुम्बई
मो.–9892096034

कीमती समान

निश्चय ही
मैं याद रखूंगी
यात्रा में मेरे
कीमती सामान,
सब अपने पास रखूंगी।
चेतना में स्मृति
परछाइयाँ प्रारब्ध की,
कर्म में क्रमबद्ध
एक कोशीय युग्मज
फिर बहुकोशीय
ऊतक, अंग
तरलता में तैर रहे थे।
नाल से नाल तक,
मणिपुर में क्रियायें,
ग्रंथियाँ भी उत्सुक थी
असीम वेदनाओं को
सहकर,
नवजीवन आया।
कोमल रीढ़ में
सुदृढ़ बल पाया।
सरीसृप सा रेंगता
चौपाया सा दौड़ता
अंत में दोपाया हो गया
मानव।
फिर काम, क्रोध, लोभ, मद, अहम्
वहम में भूल गया।
कर्म का सिद्धान्त,
जीवन की यात्रा का वृतांत
प्रारंभ से अंत तक
असंख्य शून्यों को
बढ़ाने के लिये शून्य सा
बटोरता रहा, अपना और
अन्य का कीमती सामान।

जनम–जनम के फेरे

जन्म से मृत्यु,
धर्म का आचरण
मृत्यु से जन्म तक
चेतना का आवरण।

असीम सत्ता का चयन
फिर होता पुनर्जन्म
विविध योनियों का
विश्व में वर्गीकरण।

जनम–जनम के फेरे,
मोहपाश के घेरे,
अंधकार घनेरे,
खुली आँखें हो गये सबेरे।

मानव तन पर तना,
कुछ तो भूमिका बना,
संचित कर्मबीज सींचकर,
मुमुक्षत्व पर कदम बढ़ा।

अंतिम विदाई

कभी मैं,
उतरती थी
तेरे मन के आँगन में
भोर की तरूण अंगड़ाई में।
दिन भर बातें करती
बागों की अमराई में।
शाम में दुल्हन सी सजती
स्वप्न से सुन्दर अरूणाई में।
रातों को चाँदनी सी छिटक जाती
सूनेपन को भरती तेरी तन्हाई में।
अब तेरे मन को घेरे
कंटीले काँटें चुभते बड़ी गहराई से
लहूलुहान अभिलाषाओं संग
लौट आती मैं,
उलझती दिन रात
अपने दर्द की भरपाई में।
गिनती की साँसें
गिनती आतुर अंतिम विदाई को।

समाधिस्थ संध्या

समाधिस्थ संध्या
ध्यानरत होती किरणें
आराध्य आदित्य
अस्त और उदित
सात अश्वों सहित
वयस्त धारणायें
आतुर होने को
सृष्टि में समाहित।

तमन्ना

ख़्वाबों के एक जहाँ में
यादों के आसमां में
अपने अरमानों पर कर काबू
तुम्हारी मुस्कराहट और अपनी रगों से
लहू का रंग लेकर
अपनी हँसी दुनियाँ में
इन्द्रधनुष बनाने कि तमन्ना थी
तुम्हारा न में गर्दन हिलाना और फिर दूर चले जाना
बस काफी था
दिल के दो टुकड़े करने को।

चंपा मुस्कुराती है

हर एक सुबह
आंगन में झाड़ू मार, नहा–धो
सबसे पहले तुलसी को जल चढ़ाती है
आंगन की तुलसी सा ही
उसका जीवन भी है
बच्चों को स्कूल भेज खुद भी काम पर जाती है
काम से लौट घर के काम पर लग जाती है
थकान उसके पास नहीं मंडराती
उसके साहस के सामने नहीं टिक पाती
शाम को तुलसी चौरा में दीपक जला
चंपा मुस्कुराती है

अहमियत

तुमने समझा
मेरे विचारों को
अहमियत दी,
मेरे ख़्यालों को
और फिर
शुरु हुई एक कहानी
जिसमें छुपी रही
मेरी तेरी सब की
ज़िंदगानी।

शिवेन्द्र यादव
जगदलपुर
मो.–9406479491

तेरा एहसास

एक ठण्डी हवा का झोंका
जब–जब मेरे पास से गुजरता है
तब–तब तेरा एहसास
हर एक बार मुझे होता है।
तू सही न सही
तेरा एहसास ही सही
जिन्दगी जीने का एक मकसद तो देता है।

एहसास

हर एक चुम्बन
वो हर एक एहसास
मुझे आज भी याद है
जो एक माँ का
उसके बेटे पर अधिकार है।
मन में चिंता
चेहरे पर तनाव
बेटे के भविष्य का ख़्याल
मुंह में डांट
पिता का अलग ही अंदाज हैं।

वसंत

रक्तमय केसर भरा
खिलखिलाकर हंस रहा
हिल रहा, डुल रहा
धूर्तता को पट रहा
जात वेद शिखी सा
द्रव्य के ऋषि सा
प्रकृत के चैतन्य का
भाव वेश धर रहा
भूतेश को प्यारा लगे
मनीषा का प्रतीक ये
अलि स्वागत गीत गा रहा
चंचला को बुला रहा
श्री की मुस्कान ये
उर्मि की पहचान यह।

औसत जिंदगीनामा

दिनेश विश्वकर्मा
कोण्डागांव
मो.–8463852536

कितनी परतें हैं जिंदगी की समझूं अगर...
तकिये पर ख्वाबों की कसीदाकारी है
सड़कों पर तारीखें बिछी हैं
रिक्शों के पीछे उधारी वाली पर्ची छपी है,
मैं मौजूद हूं के हर पल ख़्यालातों के गिरफ़्त में हूं
अजब कश्मकश है
एक जिंदगी
एक ही वक़्त पे
सौ किरदारों का हुनर कैसे थोप जाती है.....

बरसों पहले जब किराये के आशियानों में
ये शहर कभी अजनबी लगता
तो गांव के अपनेपन से
बिछड़ने की कसक होती.....

तमाम जमापूंजी की सूरत में
कुछ आंगन समेटे
ये तीन कमरे का पक्का मकान
'राशन कार्ड' की फेहरिस्त में शुमार नहीं होता
वो कैरोसीन की महक मुझसे खफा है
जाने कबसे.....

अखबार बयां कर रही है
एक नगर बंद की ताजा तस्वीरें
कई ट्रेक्टर सब्जियां सड़कों पर बिखरी पड़ी हैं

किसानों को मुकम्मल कीमत न मिल पाने के एवज में
और मेरे शहर में, मैले चिथड़े कबाओं में गुम एक शख्स
बाजार खत्म होने के बाद सड़ी सब्जियों को समेटकर
अपने हिस्से की जिंदगी से वफा निभाता है
उसके इस ठहराव को
सारा शहर बड़ी मसरूफियत से तकता है.....

हर सोचने वाला यह सोचकर
कि उसकी तरह कोई सोच रहा होगा
सोचते – सोचते उम्र कई मीलों का
सफर करती है,

कभी –कभी तो घर की दीवारें
सरक –सरक कर मेरे करीब आती हैं
सुबक –सुबक कर कह देना चाहती हों जैसे
ईट–गारे अब थक चुके हैं
लोहे की हड्डियों को जंग लग चुकी है
दराज के कई कागजों में
अस्पताल की पुरानी पर्ची झाँकती रहती है
मेरे तमाम परहेजों पे अपना हक जताती हुई...

मुकद्दर, मेहनत जोड़कर हम सब
अपने अक्स में ढलते है
कुछ बढ़ गये हमसे हजार क़दम
कुछ चन्द सिक्कों से पीछे हैं
जब देखा किसी बेबस को
मन मुकम्मल मददगार, हालात मगर कतरा के मिले

इस कदर ताउम्र पीछा करती हैं
इसके, उसके अपने हालात.....

और मैं सब कुछ ठीक हो जाने की
खुशरंग नज़ीरों की तर्जुमा करके
पलकों को किवाड़ बंद कर लेने को
कहता हूँ
सूरज भी अपनी शनासाई के सफे पलट गया
कल निकल पड़ेगा दूसरी सिम्त से;
परिन्दों के सस्वर गान में
उम्मीदों, उमंगों की पहली किरण में
कहीं अजानों की बोल में
कहीं ढोल मंजीरों की थाप के साथ.....

ग़ज़ल

किरदार पासे का हूं मगर सोचता हूं मैं
किसकी बिसात पर यहां फेंका गया हूं मैं

कल शाम दिल–उदास का आलम न पूछिये
बस देर तक जमीन को तकता रहा हूं मैं

मैं फिर किसी जुनून का काइल न हो सका
यानी मिरे मिजाज से घबरा गया हूं मैं

है ये अजीब हाल के फिर जो मिला मुझे
उसको तेरी मिसाल पे ठुकरा रहा हूं मैं

जैसे खुशी का हाल खुशी का मलाल हो
तेरे बगैर यूं खुशी में मुब्तिला हूं मैं

मंजिल किसे कहा था मुझे याद भी नही
बस साथ रास्तों के टहलता रहा हूं मैं

कहतीं हैं मुझ से वक्त–ए–रवाँ की हिकायतें
सदियों से चल रहा हसीं सिलसिला हूं मैं

ग़ज़ल

आसमानी पैरहन है
उसमें खुश्बू का बदन है

डायरी में लिक्खी बातें
कागजी बातों का फन है

कुछ नहीं अब जहनों दिल में
ये उदासी आदतन है

तेरे हिस्से रूह आयी
मेरे हिस्से में बदन है

कितने सज्दों की मुरादें
आसमानों में दफन है

मेरे कमरे की खमोशी
आप अपने में सुखन है

ग़ज़ल

कभी तू दिल, कभी दिल तुझको मनाता होगा
इश्क के नाम यही खेल – तमाशा होगा

तू तो दुनिया को बनाता है मिटाता है तो फिर
तेरे हिस्से में भी कुछ जुर्म तो आता होगा

आब ही आब समन्दर तू मगर हाय नसीब
बद्दुआ दे के ही प्यासा तुझे जाता होगा

इन चरागों से उजालों की कोई बात न कर
ये भी हैरान हैं किस तर्ह उजाला होगा

अब तो बस हाथ में उम्मीद का तेशा है मेरे
देखिये राह बनेगी या खसारा होगा

हम उसी को ही समझ लेंगे अब अपनी मंजिल
इस सफीने की जो किस्मत में किनारा होगा

शैलेन्द्र शर्मा
दंतेवाड़ा, छ.ग.
मो.–9424278897

ग़ज़ल

फिर वही इंतिजार था जिसका कोई सिरा नही
जाती रही बहार पर फूल कोई खिला नही

इक ऐसे इम्तिहान में उम्र गुजार दी जिसे
बस दे रहे हैं बारहा क्यूँ दे रहे पता नही

अच्छा हुआ जो आपने दिल से भुला दिया हमें
हमने भी की थी कोशिशें हमसे मगर हुआ नही

एक जरा सी बात को तूल दिया गया बहुत
यानी अना अजीज थी आपसी राब्ता नही

तेरे बगैर आशियाँ कैसे रहेगा खुशनुमां
इतनी बड़ी सजा न दे इतनी बड़ी खता नही

ग़ज़ल

खुदगर्ज है ये दिल बहुत ये हिज्र क्या सह पाएगा
कुछ रोज की बस बात है दिल फिर किसी पे आएगा

बागात के ये गुल जवाँ ये सब्जो की आराइशें
ये सब निहाँ हो जायेंगे गर वो न मिलने आएगा

पहलूँ में हो कोई हसीं खुशरंग हो दिल की जमीं
अब छोड़िये ये ख्वाब भी ये ख्वाब ही रह जाएगा

बदनामियाँ रुसवाइयाँ , परछाइयां हैं इश्क की
गर जिन्दगी है इश्क तो गम जिन्दगी हो जाएगा

फिरती रहेगी रूह इक घायल अजल से ता अबद
मेरे जहन से जब तसव्वुर आप का टकराएगा

बूढ़ी काकी

1

बुढ़ापा बहुधा बचपन का पुनरागमन हुआ करता है। बूढ़ी काकी में जिह्वास्वाद के सिवा और कोई चेष्टा शेष न थी और न अपने कष्टों की ओर आकर्षित करने का रोने के अतिरिक्त कोई दूसरा सहारा ही। समस्त इन्द्रियाँ नेत्र हाथ और पैर जवाब दे चुके थे। पृथ्वी पर पड़ी रहतीं और घर वाले कोई बात उनकी इच्छा के प्रतिकूल करते भोजन का समय टल जाता या उसका परिमाण पूर्ण न होता अथवा बाजार से कोई वस्तु आती और न मिलती तो ये रोने लगती थीं। उनका रोना–सिसकना साधारण रोना न थाए वे गला फाड़–फाड़कर रोती थीं।

उनके पतिदेव को स्वर्ग सिधारे कालांतर हो चुका था। बेटे तरुण हो–होकर चल बसे थे। अब एक भतीजे के अलावा और कोई न था। उसी भतीजे के नाम उन्होंने अपनी सारी सम्पत्ति लिख दी। भतीजे ने सारी सम्पत्ति लिखाते समय खूब लम्बे–चौड़े वादे किए किन्तु वे सब वादे केवल कुली–डिपो के दलालों के दिखाए हुए सब्जबाग थे। यद्यपि उस सम्पत्ति की वार्षिक आय डेढ़–दो सौ रुपए से कम न थी तथापि बूढ़ी काकी को पेट भर भोजन भी कठिनाई से मिलता था। इसमें उनके भतीजे पंडित बुद्धिराम का अपराध था अथवा उनकी अर्धांगिनी श्रीमती रूपा का इसका निर्णय करना सहज नहीं। बुद्धिराम स्वभाव के सज्जन थे किंतु उसी समय तक जब कि उनके कोष पर आँच न आए। रूपा स्वभाव से तीव्र थी सही पर ईश्वर से डरती थी। अतएव बूढ़ी काकी को उसकी तीव्रता उतनी न खलती थी जितनी बुद्धिराम की भलमनसाहत।

बुद्धिराम को कभी–कभी अपने अत्याचार का खेद होता था। विचारते कि इसी सम्पत्ति के कारण मैं इस समय भलामानुष बना बैठा हूँ। यदि भौतिक आश्वासन और सूखी सहानुभूति से स्थिति में सुधार हो सकता हो उन्हें कदाचित् कोई आपत्ति न होती परन्तु विशेष व्यय का भय उनकी सुचेष्टा को दबाए रखता था। यहाँ तक कि यदि द्वार पर कोई भला आदमी बैठा होता और बूढ़ी काकी उस समय अपना राग अलापने लगतीं तो वह आग हो जाते और घर में आकर उन्हें जोर से डाँटते। लड़कों को बुड्ढों से स्वाभाविक विद्वेष होता ही है और फिर जब माता–पिता का यह रंग देखते तो वे बूढ़ी काकी को और सताया करते। कोई चुटकी काटकर भागता कोई इन पर पानी की कुल्ली कर देता। काकी चीख मारकर रोतीं परन्तु यह बात प्रसिद्ध थी कि वह केवल खाने के लिए रोती हैं अतएव उनके संताप और आर्तनाद पर कोई ध्यान नहीं देता था। हाँ काकी क्रोधातुर होकर बच्चों को गालियाँ देने लगतीं तो रूपा घटनास्थल पर आ पहुँचती। इस भय से काकी अपनी जिह्वा कृपाण का कदाचित् ही प्रयोग करती थीं यद्यपि उपद्रव–शान्ति का यह उपाय रोने से कहीं अधिक उपयुक्त था।

सम्पूर्ण परिवार में यदि काकी से किसी को अनुराग था तो वह बुद्धिराम की छोटी लड़की लाडली थी। लाडली अपने दोनों भाइयों के भय से अपने हिस्से की मिठाई–चबैना बूढ़ी काकी के पास बैठकर खाया करती थी। यही उसका रक्षागार था और यद्यपि काकी की शरण उनकी लोलुपता के कारण बहुत मंहगी पड़ती थी तथापि भाइयों के अन्याय से सुरक्षा कहीं सुलभ थी तो बस यहीं। इसी स्वार्थानुकूलता ने उन दोनों में सहानुभूति का आरोपण कर दिया था।

2

रात का समय था। बुद्धिराम के द्वार पर शहनाई बज रही थी और गाँव के बच्चों का झुंड विस्मयपूर्ण नेत्रों से गाने का रसास्वादन कर रहा था। चारपाइयों पर मेहमान विश्राम करते हुए नाइयों से मुक्कियाँ लगवा रहे थे। समीप खड़ा भाट विरुदावली सुना रहा था और कुछ भावज्ञ मेहमानों की वाह वाह पर ऐसा खुश हो रहा था मानो इस वाह–वाह का यथार्थ में वही अधिकारी है। दो–एक अंग्रेजी पढ़े हुए नवयुवक इन व्यवहारों से उदासीन थे। वे इस गँवार मंडली में बोलना अथवा सम्मिलित होना अपनी प्रतिष्ठा के प्रतिकूल समझते थे।

आज बुद्धिराम के बड़े लड़के मुखराम का तिलक आया है। यह उसी का उत्सव है। घर के भीतर स्त्रियाँ गा रही थीं और रूपा मेहमानों के लिए भोजन में व्यस्त थी। भट्टियों पर कढ़ाह चढ़ रहे थे। एक में पूड़ियाँ–कचौड़ियाँ निकल रही थीं दूसरे में अन्य पकवान बनते थे। एक बड़े हंडे में मसालेदार तरकारी पक रही थी। घी और मसाले की क्षुधावर्धक सुगंधि चारों ओर फैली हुई थी।

बूढ़ी काकी अपनी कोठरी में शोकमय विचार की भाँति बैठी हुई थीं। यह स्वाद मिश्रित सुगंधि उन्हें बेचैन कर रही थी। वे मन ही मन विचार कर रही थीं संभवतः मुझे पूड़ियाँ न मिलेंगीं। इतनी देर हो गई कोई भोजन लेकर नहीं आया। मालूम होता है सब लोग भोजन कर चुके हैं। मेरे लिए कुछ न बचा। यह सोचकर उन्हें रोना आया परन्तु अपशकुन के भय से वह रो न सकीं।

आहा कैसी सुगंधि है, अब मुझे कौन पूछता है। जब रोटियों के ही लाले पड़े हैं तब ऐसे भाग्य कहाँ कि भरपेट पूड़ियाँ मिलें यह विचार कर उन्हें रोना आया कलेजे में हूक–सी उठने लगी। परंतु रूपा के भय से उन्होंने फिर मौन धारण कर लिया।

बूढ़ी काकी देर तक इन्ही दुखदायक विचारों में डूबी रहीं। घी और मसालों की सुगंधि रह–रहकर मन को आपे से बाहर किए देती थी। मुँह में पानी भर–भर आता था। पूड़ियों का स्वाद स्मरण करके हृदय में गुदगुदी होने लगती थी। किसे पुकारूँ आज लाडली बेटी भी नहीं आई। दोनों छोकरे सदा दिक दिया करते हैं। आज उनका भी कहीं पता नहीं। कुछ मालूम तो होता कि क्या बन रहा है।

बूढ़ी काकी की कल्पना में पूड़ियों की तस्वीर नाचने लगी। खूब लाल–लाल फूली–फूली नरम–नरम होंगीं। रूपा ने भली–भाँति भोजन किया होगा। कचौड़ियों में अजवाइन और इलायची की महक आ रही होगी। एक पूड़ी मिलती तो जरा हाथ में लेकर देखती। क्यों न चल कर कढ़ाह के सामने ही बैठूँ। पूड़ियाँ छन–छनकर तैयार होंगी। कढ़ाह से गरम–गरम निकालकर थाल में रखी जाती होंगी। फूल हम घर में भी सूँघ सकते हैं परन्तु वाटिका में कुछ और बात होती है। इस प्रकार निर्णय करके बूढ़ी काकी उकड़ूँ बैठकर हाथों के बल सरकती हुई बड़ी कठिनाई से चौखट से उतरीं और धीरे–धीरे रेंगती हुई कढ़ाह के पास जा बैठीं। यहाँ आने पर उन्हें उतना ही धैर्य हुआ जितना भूखे कुत्ते को खाने वाले के सम्मुख बैठने में होता है।

रूपा उस समय कार्यभार से उद्विग्न हो रही थी। कभी इस कोठे में जाती कभी उस कोठे में कभी कढ़ाह के पास जाती कभी भंडार में जाती। किसी ने बाहर से आकर कहा –महाराज ठंडई मांग रहे हैं। ठंडई देने लगी। इतने में फिर किसी ने आकर कहा–भाट आया है उसे कुछ दे दो। भाट के लिए सीधा निकाल रही थी कि एक तीसरे आदमी ने आकर पूछा–अभी भोजन तैयार होने में कितना विलम्ब है जरा ढोल मंजीरा उतार दो। बेचारी अकेली स्त्री दौड़ते–दौड़ते व्याकुल हो रही थी झुंझलाती थी, कुढ़ती थी परन्तु क्रोध प्रकट करने का अवसर न पाती थी। भय होता कहीं पड़ोसिनें यह न कहने लगें कि इतने में उबल पड़ीं। प्यास से स्वयं कंठ सूख रहा था। गर्मी के मारे फुँकी जाती थी परन्तु इतना अवकाश न था कि जरा पानी पी ले अथवा पंखा लेकर झले। यह भी खटका था कि जरा आँख हटी और चीजों की लूट मची। इस अवस्था में उसने बूढ़ी काकी को कढ़ाह के पास बैठी देखा तो जल गई। क्रोध न रुक सका। इसका भी ध्यान न रहा कि पड़ोसिनें बैठी हुई हैं मन में क्या कहेंगीं। पुरुषों में लोग सुनेंगे तो क्या कहेंगे। जिस प्रकार मेंढक केंचुए पर झपटता है उसी प्रकार वह बूढ़ी काकी पर झपटी और उन्हें दोनों हाथों से झटक कर बोली– ऐसे पेट में आग लगे, पेट है या भाड़! कोठरी में बैठते हुए क्या दम घुटता था, अभी मेहमानों ने नहीं खाया, भगवान को भोग नहीं लगाए तब तक धैर्य न हो सका, आकर छाती पर सवार हो गई। जल जाए ऐसी जीभ। दिन भर खाती न होती तो जाने किसकी हांडी में मुँह डालती, गाँव देखेगा तो कहेगा कि बुढ़िया भरपेट खाने को नहीं पाती तभी तो इस तरह मुँह बाए फिरती है। डायन न मरे न मांचा छोड़े। नाम बेचने पर लगी है। नाक कटवा कर दम लेगी। इतना ठूँसती है न जाने कहां भस्म हो जाता है। भला चाहती हो तो जाकर कोठरी में बैठो, जब घर के लोग खाने लगेंगे तब तुम्हे भी मिलेगा। तुम कोई देवी नहीं हो कि चाहे किसी के मुँह में पानी न जाए परन्तु तुम्हारी पूजा पहले ही हो जाए।

बूढ़ी काकी ने सिर उठाया न रोईं न बोलीं। चुपचाप रेंगती हुई अपनी कोठरी में चली गईं। आवाज ऐसी कठोर थी कि हृदय और मष्तिष्क की सम्पूर्ण शक्तियाँ सम्पूर्ण विचार और सम्पूर्ण भार उसी ओर आकर्षित हो गए थे। नदी में जब कगार का कोई वृहद खंड कटकर गिरता है तो आस–पास का जल समूह चारों ओर से उसी स्थान को पूरा करने के लिए दौड़ता है।

3

भोजन तैयार हो गया है। आंगन में पत्तलें पड़ गईं मेहमान खाने लगे। स्त्रियों ने जेवनार–गीत गाना आरम्भ कर दिया। मेहमानों के नाई और सेवकगण भी उसी मंडली के साथ किंतु कुछ हटकर भोजन करने बैठे थे परन्तु सभ्यतानुसार जब तक सब के सब खा न चुकें कोई उठ नहीं सकता था। दो–एक मेहमान जो कुछ पढ़े–लिखे थे सेवकों के दीर्घाहार पर झुंझला रहे थे। वे इस बंधन को व्यर्थ और बेकार की बात समझते थे।

बूढ़ी काकी अपनी कोठरी में जाकर पश्चाताप कर रही थी कि मैं कहाँ से कहाँ आ गई। उन्हें रूपा पर क्रोध नहीं था। अपनी जल्दबाजी पर दुख था। सच ही तो है जब तक मेहमान लोग भोजन न कर चुकेंगे घर वाले कैसे खाएंगे। मुझ से इतनी देर भी न रहा गया। सबके सामने पानी उतर गया। अब जब तक कोई बुलाने नहीं आएगा न जाऊंगी।

मन ही मन इस प्रकार का विचार कर वह बुलाने की प्रतीक्षा करने लगीं। परन्तु घी की रुचिकर सुवास बड़ी ध ैर्य–परीक्षक प्रतीत हो रही थी। उन्हें एक–एक पल एक–एक युग के समान मालूम होता था। अब पत्तल बिछ गई होगी। अब मेहमान आ गए होंगे। लोग हाथ पैर धो रहे हैं नाई पानी दे रहा है। मालूम होता है लोग खाने बैठ गए। जेवनार गाया जा रहा है यह विचार कर वह मन को बहलाने के लिए लेट गईं। धीरे–धीरे एक गीत गुनगुनाने लगीं। उन्हें मालूम हुआ कि मुझे गाते देर हो गई। क्या इतनी देर तक लोग भोजन कर ही रहे होंगे। किसी की आवाज सुनाई नहीं देती। अवश्य ही

लोग खा–पीकर चले गए। मुझे कोई बुलाने नहीं आया है। रूपा चिढ़ गई है, क्या जाने न बुलाए। सोचती हो कि आप ही आवेंगीं वह कोई मेहमान तो नहीं जो उन्हें बुलाऊँ। बूढ़ी काकी चलने को तैयार हुईं। यह विश्वास कि एक मिनट में पूड़ियाँ और मसालेदार तरकारियां सामने आएंगीं उनकी स्वादेन्द्रियों को गुदगुदाने लगा। उन्होंने मन में तरह–तरह के मंसूबे बांधे– पहले तरकारी से पूड़ियाँ खाऊंगी फिर दही और शक्कर से कचौरियाँ रायते के साथ मजेदार मालूम होंगी। चाहे कोई बुरा माने चाहे भलाए मैं तो मांग–मांगकर खाऊंगी। यही न लोग कहेंगे कि इन्हें विचार नहीं कहा करें इतने दिन के बाद पूड़ियाँ मिल रही हैं तो मुँह झूठा करके थोड़े ही उठ जाऊंगी ।

वह उकड़ूँ बैठकर सरकते हुए आंगन में आईं। परन्तु हाय दुर्भाग्य! अभिलाषा ने अपने पुराने स्वभाव के अनुसार समय की मिथ्या कल्पना की थी। मेहमान–मंडली अभी बैठी हुई थी। कोई खाकर उंगलियाँ चाटता था कोई तिरछे नेत्रों से देखता था कि और लोग अभी खा रहे हैं या नहीं। कोई इस चिंता में था कि पत्तल पर पूड़ियाँ छूटी जाती हैं किसी तरह इन्हें भीतर रख लेता। कोई दही खाकर चटकारता था परन्तु दूसरा दोना मांगते संकोच करता था कि इतने में बूढ़ी काकी रेंगती हुई उनके बीच में आ पहुँची। कई आदमी चौंककर उठ खड़े हुए। पुकारने लगे– अरे यह बुढ़िया कौन है यहाँ कहाँ से आ गई देखो किसी को छू न दे।

पंडित बुद्धिराम काकी को देखते ही क्रोध से तिलमिला गए। पूड़ियों का थाल लिए खड़े थे। थाल को जमीन पर पटक दिया और जिस प्रकार निर्दयी महाजन अपने किसी बेइमान और भगोड़े कर्जदार को देखते ही उसका टेंटुआ पकड़ लेता है उसी तरह लपक कर उन्होंने काकी के दोनों हाथ पकड़े और घसीटते हुए लाकर उन्हें अंधेरी कोठरी में धम से पटक दिया। आशारूपी वटिका लू के एक झोंके में विनष्ट हो गई।

मेहमानों ने भोजन किया। घरवालों ने भोजन किया। बाजे वाले, धोबी, चमार भी भोजन कर चुके परन्तु बूढ़ी काकी को किसी ने न पूछा। बुद्धिराम और रूपा दोनों ही बूढ़ी काकी को उनकी निर्लज्जता के लिए दंड देने क निश्चय कर चुके थे। उनके बुढ़ापे पर दीनता पर हत्ज्ञान पर किसी को करुणा न आई थी। अकेली लाडली उनके लिए कुढ़ रही थी।

लाडली को काकी से अत्यंत प्रेम था। बेचारी भोली लड़की थी। बालविनोद और चंचलता की उसमें गंध तक न थी। दोनों बार जब उसके माता–पिता ने काकी को निर्दयता से घसीटा तो लाडली का हृदय ऐंठकर रह गया। वह झुंझला रही थी कि हम लोग काकी को क्यों बहुत–सी पूड़ियाँ नहीं देते। क्या मेहमान सब की सब खा जाएंगे और यदि काकी ने मेहमानों से पहले खा लिया तो क्या बिगड़ जाएगा वह काकी के पास जाकर उन्हें धैर्य देना चाहती थी परन्तु माता के भय से न जाती थी। उसने अपने हिस्से की पूड़ियाँ बिल्कुल न खाईं थीं। अपनी गुड़िया की पिटारी में बन्द कर रखी थीं। उन पूड़ियों को काकी के पास ले जाना चाहती थी। उसका हृदय अधीर हो रहा था। बूढ़ी काकी मेरी बात सुनते ही उठ बैठेंगीं पूड़ियाँ देखकर कैसी प्रसन्न होंगीं! मुझे खूब प्यार करेंगीं।

4

रात को ग्यारह बज गए थे। रूपा आंगन में पड़ी सो रही थी। लाडली की आँखों में नींद न आती थी। काकी को पूड़ियाँ खिलाने की खुशी उसे सोने न देती थी। उसने गुड़ियों की पिटारी सामने रखी थी। जब विश्वास हो गया कि अम्मा सो रही हैं तो वह चुपके से उठी और विचारने लगी कैसे चलूँ। चारों ओर अंधेरा था। केवल चूल्हों में आग चमक रही थी और चूल्हों के पास एक कुत्ता लेटा हुआ था। लाडली की दृष्टि सामने वाले नीम पर गई। उसे मालूम हुआ कि उस पर हनुमान जी बैठे हुए हैं। उनकी पूँछ उनकी गदा वह स्पष्ट दिखलाई दे रही है। मारे भय के उसने आँखें बंद कर लीं। इतने में कुत्ता उठ बैठा लाडली को ढांढ़स हुआ। कई सोए हुए मनुष्यों के बदले एक भागता हुआ कुत्ता उसके लिए अधिक धैर्य का कारण हुआ। उसने पिटारी उठाई और बूढ़ी काकी की कोठरी की ओर चली।

5

बूढ़ी काकी को केवल इतना स्मरण था कि किसी ने मेरे हाथ पकड़कर घसीटा फिर ऐसा मालूम हुआ कि जैसे कोई पहाड़ पर उड़ाए लिए जाता है। उनके पैर बार–बार पत्थरों से टकराए तब किसी ने उन्हें पहाड़ पर से पटका वे मूर्छित हो गईं।

जब वे सचेत हुईं तो किसी की जरा भी आहट न मिलती थी। समझी कि सब लोग खा–पीकर सो गए और उनके साथ मेरी तकदीर भी सो गई। रात कैसे कटेगी राम! क्या खाऊँ पेट में अग्नि धधक रही है। हा! किसी ने मेरी सुधि न ली। क्या मेरा पेट काटने से धन जुड़ जाएगा इन लोगों को इतनी भी दया नहीं आती कि न जाने बुढिया कब मर जाए उसका जी क्यों दुखावें मैं पेट की रोटियाँ ही खाती हूँ कि और कुछ इस पर यह हाल। मैं अंधी अपाहिज ठहरी न कुछ सुनूँ न बूझूँ। यदि आंगन में चली गई तो क्या बुद्धिराम से इतना कहते न बनता था कि काकी अभी लोग खाना खा रहे हैं फिर आना। मुझे घसीटा पटका। उन्ही पूड़ियों के लिए रूपा ने सबके सामने गालियाँ दीं। उन्हीं पूड़ियों के लिए इतनी दुर्गति करने पर भी उनका पत्थर का कलेजा न पसीजा। सबको खिलाया मेरी बात तक न पूछी। जब तब ही न दीं तब अब

क्या देंगे यह विचार कर काकी निराशामय संतोष के साथ लेट गई। ग्लानि से गला भर–भर आता था परन्तु मेहमानों के भय से रोती न थीं। सहसा कानों में आवाज आई– काकी उठो मैं पूड़ियां लाई हूँ। काकी ने लाड़ली की बोली पहचानी। चटपट उठ बैठीं। दोनों हाथों से लाडली को टटोला और उसे गोद में बिठा लिया। लाडली ने पूड़ियाँ निकालकर दीं।

काकी ने पूछा– क्या तुम्हारी अम्मा ने दी है?

लाडली ने कहा– नहीं यह मेरे हिस्से की हैं।

काकी पूड़ियों पर टूट पडीं। पाँच मिनट में पिटारी खाली हो गई। लाडली ने पूछा– काकी पेट भर गया?

जैसे थोड़ी–सी वर्षा ठंडक के स्थान पर और भी गर्मी पैदा कर देती है उस भाँति इन थोड़ी पूड़ियों ने काकी की क्षुधा और इच्छा को और उत्तेजित कर दिया था। बोलीं– नहीं बेटी, जाकर अम्मा से और मांग लाओ।

लाड़ली ने कहा– अम्मा सोती हैं जगाऊंगी तो मारेंगीं।

काकी ने पिटारी को फिर टटोला। उसमें कुछ खुर्चन गिरी थी। बार–बार होंठ चाटती थीं, चटखारे भरती थीं।

हृदय मसोस रहा था कि और पूड़ियाँ कैसे पाऊँ। संतोष–सेतु जब टूट जाता है तब इच्छा का बहाव अपरिमित हो जाता है। मतवालों को मद का स्मरण करना उन्हें मदांध बनाता है। काकी का अधीर मन इच्छाओं के प्रबल प्रवाह में बह गया। उचित और अनुचित का विचार जाता रहा। वे कुछ देर तक उस इच्छा को रोकती रहीं। सहसा लाडली से बोलीं.. मेरा हाथ पकड़कर वहाँ ले चलो जहाँ मेहमानों ने बैठकर भोजन किया है।

लाडली उनका अभिप्राय समझ न सकी। उसने काकी का हाथ पकड़ा और ले जाकर झूठे पत्तलों के पास बिठा दिया। दीन क्षुधातुर हत् ज्ञान बुढ़िया पत्तलों से पूड़ियों के टुकड़े चुन–चुनकर भक्षण करने लगी। ओह दही कितना स्वादिष्ट था कचौड़ियाँ कितनी सलोनी खस्ता कितने सुकोमल। काकी बुद्धिहीन होते हुए भी इतना जानती थीं कि मैं वह काम कर रही हूं जो मुझे कदापि न करना चाहिए। मैं दूसरों की झूठी पत्तल चाट रही हूँ। परन्तु बुढ़ापा तृष्णा रोग का अंतिम समय है जब सम्पूर्ण इच्छाएँ एक ही केन्द्र पर आ लगती हैं। बूढ़ी काकी में यह केन्द्र उनकी स्वादेन्द्रिय थी।

ठीक उसी समय रूपा की आँख खुली। उसे मालूम हुआ कि लाड़ली मेरे पास नहीं है। वह चौंकी चारपाई के इधर–उधर ताकने लगी कि कहीं नीचे तो नहीं गिर पड़ी। उसे वहाँ न पाकर वह उठी तो क्या देखती है कि लाड़ली जूठे पत्तलों के पास चुपचाप खड़ी है और बूढ़ी काकी पत्तलों पर से पूड़ियों के टुकड़े उठा–उठाकर खा रही है। रूपा का हृदय सन्न हो गया। किसी गाय की गरदन पर छुरी चलते देखकर जो अवस्था उसकी होती वही उस समय हुई। एक ब्राह्मणी दूसरों की झूठी पत्तल टटोले इससे अधिक शोकमय दृश्य असंभव था। पूड़ियों के कुछ ग्रासों के लिए उसकी चचेरी सास ऐसा निष्कृष्ट कर्म कर रही है। यह वह दृश्य था जिसे देखकर देखने वालों के हृदय काँप उठते हैं। ऐसा प्रतीत होता मानो जमीन रुक गई आसमान चक्कर खा रहा है। संसार पर कोई आपत्ति आने वाली है। रूपा को क्रोध न आया। शोक के सम्मुख क्रोध कहाँ करुणा और भय से उसकी आँखें भर आईं। इस अधर्म का भागी कौन है उसने सच्चे हृदय से गगन मंडल की ओर हाथ उठाकर कहा– परमात्मा मेरे बच्चों पर दया करो। इस अधर्म का दंड मुझे मत दो नहीं तो मेरा सत्यानाश हो जाएगा।

रूपा को अपनी स्वार्थपरता और अन्याय इस प्रकार प्रत्यक्ष रूप में कभी न दिख पड़े थे। वह सोचने लगी– हाय! कितनी निर्दयी हूँ। जिसकी सम्पति से मुझे दो सौ रुपया आय हो रही है उसकी यह दुर्गति। और मेरे कारण। हे दयामय भगवान! मुझसे बड़ी भारी चूक हुई है, मुझे क्षमा करो। आज मेरे बेटे का तिलक था। सैकड़ों मनुष्यों ने भोजन पाया। मैं उनके इशारों की दासी बनी रही। अपने नाम के लिए सैकड़ों रुपए व्यय कर दिए परन्तु जिसकी बदौलत हजारों रुपए खाए उसे इस उत्सव में भी भरपेट भोजन न दे सकी। केवल इसी कारण तो वह वृद्धा असहाय है।

रूपा ने दिया जलाया अपने भंडार का द्वार खोला और एक थाली में सम्पूर्ण सामग्रियां सजाकर बूढ़ी काकी की ओर चली।

आधी रात जा चुकी थी आकाश पर तारों के थाल सजे हुए थे और उन पर बैठे हुए देवगण स्वर्गीय पदार्थ सजा रहे थे परन्तु उसमें किसी को वह परमानंद प्राप्त न हो सकता था जो बूढ़ी काकी को अपने सम्मुख थाल देखकर प्राप्त हुआ। रूपा ने कंठारुद्ध स्वर में कहा–काकी उठो भोजन कर लो। मुझसे आज बड़ी भूल हुई उसका बुरा न मानना। परमात्मा से प्रार्थना कर दो कि वह मेरा अपराध क्षमा कर दें।

भोले–भोले बच्चों की भाँति जो मिठाइयाँ पाकर मार और तिरस्कार सब भूल जाता हैए बूढ़ी काकी वैसे ही सब भुलाकर बैठी हुई खाना खा रही थी। उनके एक–एक रौं से सच्ची सदिच्छाएँ निकल रही थीं और रूपा बैठी स्वर्गीय दृश्य का आनन्द लेने में निमग्न थी।

मुंशी प्रेमचंद की कहानी 'बूढ़ी काकी' के बहाने

मुंशी जी की कहानियों में समाज का सच होता। वो भी पूरा का पूरा, बगैर कांट छांट के!

भारत में कहानी के पितामह मुंशी जी हैं। उनके पहले कहानियों का स्वरूप राजा रानी की कहानियों की तरह था। एक तरह से भारत में कहानियों के जन्मदाता मुंशी जी को माना जाता है। उनकी कहानियां कहानी लेखन के लिए एक बेसिक खांचा है। मुंशी जी ने अपने समाज में जो गंदगी देखी और अनुभव किया, उसे लिखा।

इस तरह के वाक्य हम तमाम साहित्यिक लेखों और चर्चाओं में पढ़ते सुनते हैं। इस देश का हर बच्चा अपने दादा दादी और नाना नानी से कहानियां सुनकर अब भले ही न बड़ा होता हो परन्तु हम तो बड़े हुए हैं। महाभारत, रामायण के अलावा अनेक पुराण, पंचतंत्र की कथाएं, हितोपदेश की कहानियां, हमारे देश के वीरों की कहानियां आदि सुनकर ही बचपन बीता और आज भी हम ये सब पढ़ते ही हैं। प्रश्न ये है कि ये जो पढ़ा और सुना है; ये आखिर में है क्या ? इसे आपने तो कहानी माना नहीं, कविता है नहीं, साहित्य है नहीं तो फिर ये है क्या ?

ये नेरेटीव किसने सेट कर दिया कि कहानियां सिर्फ मुंशी जी के बाद ही लिखी गई हैं ? वे कहानियों के जन्मदाता है, ऐसा किसने साबित ही कर दिया ? ठीक ऐसा ही कविताओं के मामले में भी है दोहा, चौपाई, श्लोक आदि कविताएं नहीं हैं बल्कि कविताओं के मसीहा तो अन्य महान लोग हैं।

पुनः प्रश्न सामने है कि ये नेरेटीव किसने सेट किया ? इस प्रश्न से बड़ा प्रश्न है कि ऐसा नेरेटीव क्यों सेट किया गया ?

अगर हमें भगवान राम से बड़ा एक भगवान बनाना है तो हमें एक ऐसा भगवान गढ़ना होगा जो राम के गुणों से श्रेष्ठ हो तब कहीं जाकर वो भगवान मान्य और स्थापित होंगे। या फिर ऐसा भगवान बनाया जाए जो किसी अन्य गुण में श्रेष्ठ हो। उसके लिए पहले हमें उस तथाकथित गुण को पहले महिमामंडित करना होगा। तब उस गुण के स्वामी वो भगवान महिमामंडित होंगे।

चूंकि हम राम की तरह श्रेष्ठ बन नहीं सकते हैं इसलिए राम को महिमामंडित कैसे करें! हम उन गुणों की बारम्बार अनुमोदना करें जो कि हमारे लिए आसान हों और हमारे पास पहले से हो।

ऐसा बिल्कुल नहीं है कि मुंशी जी की कहानियां भारतीय संस्कारों के विरोध में हैं और वे अवगुणों को महिमामंडित करते थे। क्या उनकी कहानियां भारतीय संस्कृति के अनुसार नहीं चलती हैं ? क्या उनकी कहानी दया, क्षमा, न्याय और परोपकार पर आधारित नहीं हैं ? क्या ये गुण हमारी संस्कृति के मूलगुण नहीं हैं ? तो फिर उनकी कहानियां हमारी सांस्कृतिक धरोहर से अलग और विशिष्ट कैसे हो गईं ? ये अलग तरह कहानियां कैसे हो गईं ? क्या हमारी दादी नानी हमको न्याय, क्षमा, शील की कहानियां नहीं सुनाती थीं ? क्या वह अपने बच्चों को चोर के प्रति संवेदना, गुण्डे के प्रति दयालुता या फिर देश के लिए प्राण न्यौछावर करने की कहानी के विपरीत विद्रोह की बात सिखाती थीं ?

आपने कभी जरा भी विचार नहीं किया कि कहानी में कला और ढांचे के बहाने आपको किस संस्कार विरोधी दुनिया में लांच कर दिया गया ?

खैर! मुंशी जी ने तो भारतीय कहानी की परम्परा को ही अपना कर लिखा था पर उनके बाद के लोग उनको भगवान बना दिये कला के नाम पर। कहानी के विषय तत्वों को भुलवा कर, कहानी के संदेश को भुलवा कर। हम उनकी कहानी में एक दूसरा दृष्टिकोण खोजते हैं क्षमा, परोपकार, शील के अलावा हमें दिखाया जाता है शोषण, गरीबी और उस वक्त की अनैतिकता! ठीक उसी तरह जिस तरह से पानी के आधे भरे गिलास के संदर्भ में कहा जा सकता है।

भारत की संस्कृति में व्यक्ति के चारित्रिक तत्व की महानता ही हमेशा से महत्वपूर्ण रही है। उसे कहानी, कविता, महाकाव्य हर जगह दमदार ढंग से उठाया जाता है। वर्तमान कहानियों में इन संदेशात्मक तत्वों, व्यक्ति के नैतिक गुणों को तिलांजली दे दी गई है। और इसके लिए कहानी के कला पक्ष, बुनावट की ही चर्चा होती है। या फिर कहानीकार के संबंध में ही कार्यशाला होती है।

साहित्य के कला पक्ष के भगवान, मुंशी जी को इसलिए कहानी के मंदिर पर विराजमान किया गया। और उनकी कहानियों को आकाशवाणी बताया गया। उस आकाशवाणी में बताया गया कि आपके पास एक चश्मा है जब भी कहानी के संदर्भ में देखो आप ये चश्मा जरूर लगाना। कहानी में कला ढूंढना, ढांचा पकड़ कर उठाना पर नैतिकता की बात भूलकर भी मत करना। आलोचना और समालोचना के संदर्भ विषय नहीं हैं न ही व्यक्तिगत या सामाजिक नैतिकता।

इसके बाद विषय पर बात हो तो सिर्फ दलित शोषण और स्त्री आजादी के अलावा सारे विषय हैं ही नहीं, ऐसा मान लेना।

चूंकि भारत एक देवभूमि है इसलिए यहां पर बगैर मूर्ति पूजा के भी मूर्तिपूजा का विरोध नहीं होता है इसलिए साहित्य का भगवान उन्होंने गढ़ा जो मूर्तिभंजक हैं। हास्य रस पैदा हो रहा है ये लिखते वक्त पर शांत हूं क्योंकि अभी रात के दो बज रहे हैं, कोई मेरी हंसी सुनकर डर न जाये। आप भी ध्यान से पढ़िये और आपका छंटाक भर खून न बढ़े तो कहें।

यहां एक महत्वपूर्ण बात और है कि अच्छाई और बुराई, दोनों एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। दोनों का वजूद एक दूसरे से है। पर किसका वजूद भारी रहे वो हमारे लिये विचार करना महत्वपूर्ण है।

खैर! अब बात करते हैं मुंशी जी की कहानी 'बूढ़ी काकी' की, जिसे मैंने अपने चश्मे से देखा और कुछ अलग सा पाया। शायद आपको भी ये 'अलग' दृष्टिकोण कुछ अलग सा लगेगा।

बूढ़ी काकी कहानी में एक परिवार में बुजुर्ग की दुर्गति का विस्तृत विवरण है। ऐसा परिवार जो अपने कर्तव्यों को भूल कर सिर्फ धन लिप्सा में जुटा है। कहानी में कुछ दृश्य हैं जिनके माध्यम से हम बुजुर्गों की हालत को समझ सकते हैं। कहानी अपने उद्देश्य में सफल रही है उसने स्थापित कर ही दिया कि भारतीय परिवेश में बुजुर्गों का मालिक भगवान ही है। इसके अलावा और क्या क्या स्थापित हुआ है क्या आपने विचार किया है ?

यहां ये भी समझ आता है कि कहानी यही स्थापित करने के लिए ही लिखी गई थी ?

क्या हम किसी की रचना को पढ़ते वक्त अपनी आंखों से देखते हैं या फिर उधार की आंखों से? क्या हम कहानी के उन बिन्दुओं को अपने मन के पत्थर पर कुरेद–कुरेद कर गाढ़ा नहीं कर लेते हैं जो हमारे मन को बारम्बर बताई दिखाई जाती है। शिक्षा की पद्धति के अनुसार हमारे दिमाग को किसी भी बात को साबित करने के लिए सबूतों की आवश्यकता होती है। और हम उन सबूतों के लिए पुस्तकों में छपी इबारत को ही ढूंढ कर लाते हैं। यानी आज का झूठ कल का सबूत!

मुंशी जी की तमाम कहानियों में हमें क्या देखना है और क्या समझना है, ये सबकुछ तो हमें उनको भगवान बनाने के पहले ही समझा दिया गया था। तो फिर हम क्यों नहीं उनके उन गुणों को देखते हैं जिन्हें छिपाया गया है।

कभी कोई मिले और कहे कि देख भाई वो देख! इंद्रधनुष में लाल रंग कितना गाढ़ा है। तब हम उसके सात रंगों में से मात्र लाल रंग को ही खोज लेते हैं वह भी बिल्कुल उसके दूसरे रंग में मिल जाने के पहले ही। तो फिर हम क्यों नहीं आलोचना और समालोचना के तय बिन्दुओं को अपना चश्मा न बना लें! हम क्यों न देखें उसी चश्में से! भले ही समाजवाद न आये पर समाजवाद की परिकल्पना में क्यों न जुट जायें अपना सुंदर वर्तमान छोड़कर। हम अपनी मौलिकता, प्राकृतिक सोच को त्याग कर एक खांचे में प्रवेश करने को ही तो प्रगतिशीलता का पैमाना बना बैठे हैं। इस वक्त ये भूल जाते हैं कि अगर हम इसी कूपमंडूकता को प्रगतिशीलता मान लेते तो आज इस शब्द की प्रासांगिकता ही खत्म हो जाती।

क्या वास्तव में मौलिक सोच का खात्मा ही प्रगतिशीलता है ? जब एक ही चीज को अनेक लोग देख कर अनेक चित्र गढ़ते हैं तब कहीं जाकर कुछ नया उसमें से निकलता है। तो फिर हम कैसे एक ही रंग का चश्मा पहनकर सबकुछ एक ही रंग में रंगा देखें ? भले ही वह रंग लाल हो या हरा या फिर नीला या फिर भगवा! क्या हम अपनी बुद्धि को लाल गलियारे में भटकने दें या फिर दुनिया की तमाम चीजों को अपने ढंग से देखें? क्या सिर्फ मुंशी का प्रतिरूप बनते जाना ही साहित्य का विकास माना जायेगा? अगर यही सही है उनके भक्तों को ऐसा लगता है तो ये कैसे संभव हो गया भई ? उनके पहले जो थे उनको ही भगवान बने रहना था।

प्रगतिशीलता के दो महत्वपूर्ण बिन्दु हैं–पहला यह कि किसी की भी पूजा निषेद्य है। और दूसरा बिन्दु है व्यक्ति को अपने जीवन में प्रगतिशील बने रहना चाहिए। पर क्या ये व्यवहार में है, ऐसा कहीं नजर आता है ? तथाकथित रूढ़िवादी संस्कृति के खिलाफ खड़ा होने को दावा करने वाले क्या खुद कबिलाई युग के रूढ़िवादी नहीं हैं ? लिखो तो सिर्फ किसी स्थापित संस्कृति के खिलाफ, भले ही उसमें अच्छाई हो। देखो तो सिर्फ गरीब का शोषण, अमीर की अच्छाई भी मत देखो! बात करो तो सिर्फ अधिकारों की, कर्तव्यों की ओर आंखें मूंद लो। ये तो काले जल की परिभाषा हो गई। बदबू आज नहीं तो कल आनी ही है।

किसी की पूजा का विरोध करना चाहिए और उसके सिद्धांतो की ही बात होनी चाहिए। पर आपने तो कुछ देव गढ़ दिये हैं साहित्य के देव, जिनके बरअख्स ही सबकुछ पढ़ा लिखा देखा जाता है। आलोचना के अलावा सबकुछ बेकार है, आलोचक ही सबकुछ है।

खैर! अपनी बातें कहां से कहां पहुंच गईं। मुंशी जी के साहित्य को हमने किस दृष्टि से देखा है किस रंग के चश्में से देखा है इस पर विचार कर रहे थे हम। हमने कितनी आसानी से ये स्थापित कर दिया कि भारतीय परिवारों में बुजुर्गों की दुर्दशा होती है। उनकी हालत चिन्ताजनक है। चूंकि हमारे भगवान ने कहा है इसलिए ये सही है। क्योंकि इनकी कहानियों के पैमाने पर सबकुछ मापा जायेगा इसलिए हर लेखक ने इसी ओर ध्यान दिया और कागज रंग डाले। चूंकि हर ओर इस तरह की अफवाहों के संदेश साहित्य देने लगे तो फिर समाज में ये स्थापित हो ही गया।

आइये हम मुंशी जी की कहानी 'बूढ़ी काकी' के कुछ दृश्य उठाकर आपके सामने रखते हैं। जिनमें से शायद कुछ नया मिल जाये। आखिर प्रगतिशील सोच रखकर अपना आंकलन भी तो करना ही चाहिए। अपनी सोच को टटोलना भी चाहिए, अपने स्थान को जानने की कोशिश करनी चाहिए।

बुढ़ापा बहुधा बचपन का पुनरागमन हुआ करता है।

अब एक भतीजे के अलावा और कोई न था। उसी भतीजे के नाम उन्होंने अपनी सारी सम्पत्ति लिख दी।

लड़कों को बुड्ढों से स्वाभाविक विद्वेष होता ही है

सम्पूर्ण परिवार में यदि काकी से किसी को अनुराग था तो वह बुद्धिराम की छोटी लड़की लाडली थी।

दो–एक अंग्रेजी पढ़े हुए नवयुवक इन व्यवहारों से उदासीन थे। वे इस गँवार मंडली में बोलना अथवा सम्मिलित होना अपनी प्रतिष्ठा के प्रतिकूल समझते थे।

घी और मसाले की क्षुधावर्धक सुगंधि चारों ओर फैली हुई थी।

भगवान को भोग नहीं लगाए तब तक धैर्य न हो सका।

मेहमानों के नाई और सेवकगण भी उसी मंडली के साथ किंतु कुछ हटकर भोजन करने बैठे थे

दो–एक मेहमान जो कुछ पढ़े–लिखे थे सेवकों के दीर्घाहार पर झुंझला रहे थे।

जब तक मेहमान लोग भोजन न कर चुकेंगे घर वाले कैसे खाएंगे।

जिस प्रकार निर्दयी महाजन अपने किसी बेइमान और भगोड़े कर्जदार को देखते ही उसका टेंटुआ पकड़ लेता है।

इस अधर्म का दंड मुझे मत दो नहीं तो मेरा सत्यानाश हो जाएगा।

रूपा को अपनी स्वार्थपरता और अन्याय इस प्रकार प्रत्यक्ष रूप में कभी न दिख पड़े थे।

उपर्युक्त पंक्तियां मुंशी जी रचित कहानी 'बूढ़ी काकी' से उद्धृत हैं। ये पंक्तियां भी कहानी को मजबूती प्रदान कर रही हैं। इनके अर्थों के भीतर जाने के पहले एक महत्वपूर्ण बात और कहनी है कि बूढ़ी काकी कहानी को पढ़कर ऐसा क्यों लगता है कि वो हमारी संस्कृति के विद्रूप रूप को सिर्फ दिखाती नहीं बल्कि स्थापित करती है। हमें ऐसा क्यों लगता है कि बुजुर्गों की दयनीय स्थिति से परेशान समाज क्या करे। अपने बुजुर्गों को कब समाज इज्जत देना सिखेगा?

हमें ऐसा क्यों नहीं लगता कि ये कहानी तो किसी एक परिवार की आपबीती, कहानी रूप में आई है ? ऐसा क्यों लगता है कि ये तो हर घर में ही होता है ?

हमें ऐसा क्यों नहीं लगता कि ये कहानी हमें बताती है कि पश्चताप ही हमें हमारे अपराधों की गहराई से अवगत कराता है और फिर हमें नैतिकता अपना कर जीने, मर्यादापूर्वक जीने को प्रेरित करता है।

क्या इस कहानी से यह नहीं लगता कि एक भारतीय मूल्यों को स्थापित करने का भरसक प्रयास किया जा रहा है ?

बुढ़ापा बहुधा बचपन का पुनरागमन हुआ करता है।, कहानी की प्रथम पंक्ति ही साबित करती है कि समाज के उन लोगों को ध्यान देने की जरूरत है जो अपने बूढ़े मां बाप को बोझ समझते हैं। और अपने कर्तव्य से विमुख होकर उनके साथ निर्दयी बन कर व्यवहार करते हैं।

उसके बाद कहानी में लिखा है–**अब एक भतीजे के अलावा और कोई न था। उसी भतीजे के नाम उन्होंने अपनी सारी सम्पत्ति लिख दी।**

यानी संयुक्त परिवार में अपनापन विद्यमान होता है जिसके भरोसे हम अपना जीवन भी झोंक सकते हैं। ऐसा संयुक्त परिवार गया कहां ? क्या ये समय की आवश्यकता होने के साथ ही साथ मनुष्य के लंबे जीवन में आने वाली अनियमित, अनियंत्रित परेशानी, घटना के लिए आवश्यक नहीं हैं ? क्या इसका खत्म हो जाना चिंतनीय नहीं है ?

लड़कों को बुड्ढों से स्वाभाविक विद्वेष होता ही है, क्या ये पंक्ति पीढ़ियों के गेप को नहीं बताती है ? वह गेप जो हमारी संस्कृति में जाने कैसे स्थान बना गई है।

सम्पूर्ण परिवार में यदि काकी से किसी को अनुराग था तो वह बुद्धिराम की छोटी लड़की लाडली थी।

यह एक महत्वपूर्ण बात है जो भारतीय परिवार जीवन प्रणाली की सार्थकता बताती है और वह है संयुक्त परिवार! इस परिवार में कोई भी महत्वहीन नहीं होता है, यथायोग्य सभी अपने कर्तव्य का पालन करते हैं। बूढ़ों को बच्चों का साथ और बच्चों को बूढ़ों का साथ! जब बुढ़ापा बचपन का पुनरागमन होता है तो दो बच्चों को साथ खेलने का साधन हो जाता है। संयुक्त परिवार प्रणाली को किस प्रकार तोड़ा गया है, इस पर चिंतन जरूरी है।

दो–एक अंग्रेजी पढ़े हुए नवयुवक इन व्यवहारों से उदासीन थे। वे इस गँवार मंडली में बोलना अथवा सम्मिलित होना अपनी प्रतिष्ठा के प्रतिकूल समझते थे।

इन पंक्तियों में जो कुछ लिखा गया है वह तो पूरी कहानी का मनोविज्ञान समझा देता है। संपूर्ण कथा को स्पष्ट कर देता है। यही वह कारण है जिसने भारतीय संस्कृति को भारतीय जीवन पद्धति को जड़ों से हिला दिया है। यही भाव इस पंक्ति में भी है–

दो–एक मेहमान जो कुछ पढ़े–लिखे थे सेवकों के दीर्घाहार पर झुंझला रहे थे।

क्या कहानी में समयानुकूल प्रश्न नहीं उठाये गये थे ? आश्चर्य ये है कि ये प्रश्न हमें क्यों नहीं दिखाई दिये ? ये हमारी आंख का मामला नहीं है बल्कि मांइडसेट का मामला है।

घी और मसाले की क्षुधावर्धक सुगंधि चारों ओर फैली हुई थी।

इस कथन में क्या मुंशी जी ने यह नहीं बताया है कि जो भोजन बन रहा था वह क्षुधावर्धक था यानी जो कोई उसकी खुशबू को ग्रहण करे वहीं उसका दीवाना हो जाये ? जब ऐसा था तो बूढ़ी काकी का उस भोजन के लिए लालायित होना कौन सा गुनाह था ? परन्तु मेहमानों के खाने के बाद ही खाने की परम्परा थी इसलिए उस बूढ़ी काकी को भोजन नहीं दिया गया था।

इस विश्लेषण से नहीं लगता कि कहानी बुढ़ापे के दिशाहीन हो जाने का वर्णन मात्र है ? और हमने क्या किया ? हमने ये सिद्ध कर दिया कि बुढ़ापे का अपमान हमारी परम्परा थी। हम ऐसा क्यों सोचे, ये भी बहुत बड़ा प्रश्न है।

मेहमानों के नाई और सेवकगण भी उसी मंडली के साथ किंतु कुछ हटकर भोजन करने बैठे थे

ये संदर्भ क्या समझा रहा है ? यही न कि हमारी परम्पराओं में सभी वहीं भोजन करते थे और वही भोजन करते थे। क्या हमने इस कहानी से ये बिन्दु देखने की जुर्रत की ?

क्यों नहीं दिखा ये बिन्दु ? जब हमें 'ठाकुर का कुंआ' में बहुत कुछ दिखा था, 'ईदगाह' में हामिद का जो प्रेम दिखा वो लाडली में क्यों नहीं दिखता है?

जिस प्रकार निर्दयी महाजन अपने किसी बेइमान और भगोड़े कर्जदार को देखते ही उसका टेंटुआ पकड़ लेता है।

ये पंक्ति क्या कुछ अद्भुत नहीं महसूस होती है आपको पढ़ते वक्त ? 'बेइमान और भगोड़े कर्जदार' को पकड़ने दौड़ता है निर्दयी महाजन।– अब शायद कुछ अच्छे से समझ आया हो।

इस अधर्म का दंड मुझे मत दो नहीं तो मेरा सत्यानाश हो जाएगा।

रूपा को अपनी स्वार्थपरता और अन्याय इस प्रकार प्रत्यक्ष रूप में कभी न दिख पड़े थे।

ये दो वाक्य पूरी कहानी के प्राण हैं। पूरी कहानी के संदर्भ हैं जिनके इर्द–गिर्द सबकुछ रचा गया है। भारतीय संस्कृति के मूल्यों की स्थापना के लिए इतने सारे शब्दों को लेकर दृश्य गठन किया गया है। रूपा के माध्यम से हमने जाना कि कैसे समय समय पर भारतीय मूल्य, व्यक्ति के जीवन को सार्थक दिशा देते हैं। किस तरह आदमी अपने परिवार के प्रति बगैर कानून के डंडे के भी समर्पित होता है। उसके अनुभव उसके लिए जीवन के ग्रंथ बनते हैं। न कि शास्त्रोक्त वाक्य! आदमी अपने जीवन में शास्त्रोक्त वाक्यों को अनुभवों में तौलता है और फिर अपनी बुद्धि के प्रयोग से आगे की सोच बनाता है।

हमने पूरी कहानी पढ़ी, सारे दृश्य आत्मसात किये और मुंशी जी की जय का नारा भी लगाया। पर क्या हम मुंशी जी की आत्मा तक पहुंच पाये, इस पर कौन विचार करेगा ? मेरा प्रश्न पुनः सामने आ खड़ा हुआ है कि हमने क्यों नहीं देखा इन बिन्दुओं को या फिर कैसे नहीं देख पाये ?

इसका एकमात्र कारण है हमारी ब्रेनवाश की गई कुंठित सोच! हमें बताया गया है कि इस ढंग से सोचना है इस ढंग से समझना है। अगर हमारे अनुभव अलग भी हों तो हमें वही मानना है जो हमें साहित्य की प्रगतिशीलता ने बताया है। इसके लिए चाहे तो हम अपनी अच्छाइयों को ही तिलांजलि देनी पड़े। हमारे दिमाग में प्रगतिशीलता का अर्थ मात्र भारतीय संस्कृति का आंख मूंद कर विरोध करना ही ठूंसा गया है। ठीक इसके साथ विदेशी सोच को आंख मूंदकर मान लेना ही प्रगतिशीलता है, यह भी हिला डुलाकर दिमाग में भरा गया है।

अब यहां एक प्रश्न और रखना चाहूंगा कि मुंशी जी की तमाम कहानियों को किस चश्में से देखना है हमें ? क्या उन्होंने वही लिखा है जो हमने आज तक समझा है ? क्या वे भारतीय संस्कृति में सिर्फ गंदगी ढूंढकर ही स्थापित करते रहे ? या यूं मान लें कि वे सिर्फ गंदगी ही देख पाते थे ? या हम अपनी आंखों में इस तरह का चश्मा डालकर बैठे हैं जिससे उनके लेखन को इसी तरह से देखने की मजबूरी मान बैठे हैं।

साहित्य का भगवान, कहानी का देवता और काव्यदेव गठन की प्रक्रिया क्या थी ? क्या उसी प्रक्रिया के तहत ही हमारे प्रगतिगामी आधुनिक महापंडितों ने राज्याभिषेक कर मुंशी जी को भगवान के आसन पर बैठाया था ? जबकि वे खासकर मूर्तिपूजा के भयंकर विरोधी हैं। चूंकि जिन गुणों की वंदना करनी है तो उसका देवता होना जरूरी है। और फिर भारत एक देवभूमि है इसलिए यहां की मानसिकता के अनुसार किसी लेखक का भी तो देव होना चाहिए कि नहीं ? भले ही मां सरस्वती है ज्ञान की देवी, परन्तु वो सर्वधर्ममान्य नहीं हो सकती हैं क्योंकि ये देश विभिन्न धर्मप्रधान है। इसलिए एक सर्वधर्ममान्य देव बनाकर जबरन मुंशी जी को बैठा दिया गया। और उनके लेखन को फतवे के माध्यम से आकाशवाणी बनाकर अपरिवर्तनीय घोषित किया गया। ठीक उन ग्रंथों की तरह जो देववाणी हैं अपरिवर्तनीय। इसके बाद इस देवता के गुणों को मानने के लिए 'लेखक जात' को बाध्य किया बिल्कुल कबीलाइयों की तरह।

कौन सा लेखन एक अफीम है ?

किसी भी स्थान या क्षेत्र का इतिहास किस तरह लिखा जाता है आपने कभी विचार किया है ? इतिहास लेखन के वक्त वो सभी लोग तो होते नहीं हैं जिन पर लिखा जा रहा होता है। न ही वे परिस्थितियां होती हैं। तो फिर कैसे लिखा जाता है इतिहास ? पुराने मरे हुए लोगों की आत्मा को जाग्रत किया जाता है और उनसे सवाल पूछे जाते हैं ? कौन सा तरीका होता है इतिहास लेखन का ? सोचिये जरा।

जरा हम अपने घर के आसपास देखें, अपने परिवार मोहल्ले को देखें, जरा अध्ययन करें। कुछ पल्ले तो पड़ ही गया होगा आपको। हम अपने आसपास के लोगों से अपने परिवार के बुजुर्गों से सुनते हैं और अपने बाप दादा के बारे में कुछ जानकारी हासिल करते हैं। अपने मोहल्ले की जानकारी मिलती है कि यहां से इतनी दूरी पर जंगल था, यहां पर एक बड़ा पेड़ था, एक छोटा मंदिर था आदि। अपने पिता के पहले दादा की जानकारी जरा सी मिलती है। उनके जमाने की जानकारी जरा सी मिलती है। यूं हमारे घर और परिवार के साथ मोहल्ले का इतिहास पता चलता जाता है। उसके और पहले का कैसे पता चलता है ? सोचिए जरा।

विषय बदलते हैं। बस्तर के साहित्य ऋषि लाला जगदलपुरी जी ने कविताएं लिखी हैं, ग़ज़लें लिखी हैं। उन्हें कभी पढ़ा है आपने ? क्या लिखा है उन्होंने ?

मचल उठे प्लास्टिक के पुतले,
माटी के सब धरे रह गये।
जब से परवश बनी पात्रता,
चमचों के आसरे रह गये।
करनी को निस्तेज कर दिया,
इतना चालबाज कथनी में;
श्रोता बन बैठा चिंतन,
मुखरित मुख मसखरे रह गये।
आंगन की व्यापकता का,
ऐसा बंटवारा किया वक्त ने;
आंगन अंतर्ध्यान हो गया,
और सिर्फ दायरे रह गये।

और दूसरी कविता है –

देखो, सबेरा हो गया है
किसान खेत जा रहा है
सब तरफ मुर्गे बोले
सब तरफ ढेकियां बजी
उजाला पुकार रहा है
अंधेरा सब तरफ खो गया है
सितारों की हानि हुई है
देखो सुबह हुई है।
मछली, केंचुआ चबा रही है
बगुला, मछली निगल रहा है
ढोंढीया–सांप, मेंढकी पकड़ रहा है
सोनू दादा जाल फेंक रहा है
चिड़ियों के चहकते ही
देखो, सुबह हुई है।
बिस्तर कब छूट गया है
रास्तों को पांव मिल गये
लड़की पनघट चली गयी
पानी में लहरें उठ रही हैं
चुडैल रात नहीं रही
देखो, सुबह हुई है।

पहली कविता क्या बता रही है ? पहली कविता उनके वक्त को समझा रही है। वे जिस वक्त अपने साथियों के साथ बैठते थे और कविता पाठ आदि करते थे, अपने साहित्यकार मित्रों के साथ रहते थे, अपने जिस समाज में रहते थे उसका चित्रण है वो कविता। यानी उस वक्त कितनी बेइमानी थी प्लास्टिक के पुतले यानी नकली लोग उन लोगों से आगे हो गये जो मिट्टी के पुतले यानी जो मिट्टी से जुड़े हुए थे। चमचों के जयकारों से उस वक्त किसी की छवि बनती थी। और जो जमीनी काम करते थे उनको किनारे करके सिर्फ हल्ला करने वालों को, अखबारों में छपने वालों को महत्ता मिलती थी। जिनकी रचनाओं में चिन्तन होता था उन्हें किनारे करके उलजुलूल लिखने पढ़ने वालों को महत्व दिया जाता था, उनके हाथों में सभा की कमान होती थी। चिंतक बेचारे किसी किनारे में पड़े रह जाते थे और सुर्खियां उनको मिलती थी जो चालबाज होते थे। क्या ऐसा आज भी होता है ? कि सिर्फ पहले ही होता था ? सोचिए जरा।

दूसरी कविता क्या बताती है आइये जरा विचार करें। उस वक्त में लोग अलसुबह उठ जाते थे, किसान सुबह से ही खेत जाकर अपनी दिनचर्या में लग जाता था। और हरियाली थी, हर ओर तालाब थे, पानी की व्यवस्था थी जहां मछलिया रहती थीं। मौसम में सूखापन नहीं बल्कि बरसात हमेशा होती थी। तब तो केंचुए होते थे। पानी लेने के लिए तालाब जाना होता था। आदि आदि।

हमने इन दो रचनाओं और उनके विश्लेषण से जाना कि लालाजी के वक्त में जो लगभग सत्तर अस्सी साल पुराना हो सकता है तब के हालात कैसे थे, समाज कैसा था, लोग कैसे

थे, साहित्यिक समाज का परिवेश कैसा था। आदि।

यही तो है इतिहास लेखन! अपने बच्चों के लिए, उन बच्चों के बच्चों के लिए, हम यही जानकारी तो छोड़ कर जा रहे हैं। अपनी पहचान अपने वक्त की पहचान छोड़ कर जा रहे हैं। हम और आप अपना वक्त अपनी रचनाओं में चित्रित कर रहे हैं। अपने चरित्र को अपनी अगली पीढ़ी को दे रहे हैं। कभी हम–आपने विचार किया है कि हम क्या लिख रहे हैं ? अपना कैसा चरित्र चित्रित कर रहे हैं ? वास्तविक चरित्र है ? अतिरंजित चरित्र है ? असली चरित्र है ? बनावटी चरित्र है ? क्या लिख रहे हैं ?

सिर्फ और सिर्फ घटिया परिकल्पनाएं वास्तविकता से दूर!

क्या हमारा लेखन यह नहीं समझाता है कि वर्तमान समय में स्त्री और पुरूष के बीच सामजंस्य की भयंकर कमी है ?

इस युग में पुरूष एक कामी व्यक्ति है जो औरत को देखकर अपने आपे से बाहर हो जाता है जानवर की तरह। क्या हमारे बाप–भाई, मामा–चाचा–बेटा, ऐसे ही हैं ?

क्या औरत को आज भी हमारे क्षेत्र में जानवर की तरह बांध कर बोली लगाई जाती है ?

क्या परस्त्री गमन एक सामान्य सी बात है ? या परपुरूष गमन एकदम आसान और स्वीकार्य है समाज में ?

कैसा चरित्र है हमारे समाज का जो हमने दिखाया है ?

क्या इस युग में लोग बिल्कुल ही बेइमान हैं ?

हर कोई साधु धर्म के नाम पर बलात्कार कर रहा है ?

क्या समाज में पाप करना स्वीकार्य है ?

आपकी सोच क्या है इस संबंध में, उससे कहीं ज्यादा महत्वपूर्ण है कि समाज में क्या स्वीकार्य है। ऐसे लेखन से वर्तमान तो नष्ट हो ही रहा है भविष्य के लिए भी हम अपने बच्चों को यही सीख देकर जायेंगे और जब–जब वह हमारे लेखन को पढ़ेगा तो वो यही मानकर चलेगा कि मेरा पिता तो कई औरतों के साथ संबंध रखता था इसलिए ये जायज है। कई युगों से ऐसा चल रहा है। मेरे पिता का पिता (बाप शब्द ठीक लगता है।) अपनी बीवी को जरूर मारता रहा होगा तब तो उनकी कविताओं में ऐसा ही कुछ नजर आता है। हमारे पड़ोसी अपनी लड़कियों को हमसे बचाकर रखते होंगे क्योंकि हर आदमी तो हैवान था। आदि आदि।

हमारे इतिहास को बड़ी ही कुटिलता से बदला जा रहा है। हमारी भारतीय सभ्यता को दूषित किया जा रहा है। और ये सब बड़े पैमाने पर प्रगतिशीलता के नाम पर साहित्यकारों के द्वारा किया जा रहा है। योजनाबद्व तरीके से अपनी लेखनी को बेचकर अपनी विचारधारा से, समाज के नये लेखकों को, अपनी विचारधारा में घुसाने का कुत्सित प्रयास किया जा रहा है। हमको आपको अपनी संस्कृति के प्रति घृणा की हद तक ले जाया जा रहा है।

हमें एक ऐसे विशेष चश्में से ही देखने को समझाया जा रहा है जो देशहित, समाजहित और संस्कृतिहित में अनुचित है। हमें जैसा लिखने को प्रेरित किया जा रहा है उससे भविष्य और खराब होगा। वो अपना एजेण्डा थोपने के लिए सरकारी राशि का सम्मान, सम्मानपत्र और अखबारों की सुर्खियां बांट रहे हैं। सरकारी लाइब्रेरियों को अपनी योजनाबद्व तरीके से लिखी गयी पुस्तकों को भर चुके हैं। शोध कार्यों को इस तरह से परिभाषित कर दिया गया है कि हम उनके पुराने लिखे को ही सर्वमान्य मानकर आगे बढ़ पाते हैं। कुछ नामचीन माने जाने वाले इतिहासकारों ने इतिहास को विकृत कर सांस्कृतिक अपराध किया है और हम साहित्यकार उनके चश्में पहनकर उनका ही जयकारा लगाने में खुश हैं। अपनी बुद्धि को एक किनारे रखकर, जो सामने दिख रहा है, उसे छोड़कर परिकल्पना लिख रहे हैं। भारतीय समाज को कलुषित समाज घोषित कर रहे हैं। देशभर की अनेक संस्थाएं अपनी विचारधारा थोपने के लिए गधों को भी ससम्मान सम्मानपत्र बांट रही हैं। उनका सम्मान बांटने का एकमात्र एजेण्डा है उनकी विचारधारा के प्रति आपकी स्वीकृति। आप किसी का नमक खाकर कैसे उसके विरोध में लिखेंगे। अपनी आंखें खोलिए। अपने देश के लिए लिखिए। अपने भविष्य के लिए लिखिए। अपने बच्चें के नैतिक मनोबल के लिए लिखिए। अपने समाज के प्रति अपनी जिम्मेदारी समझिये। मात्र गली–कूचे के सम्मान के लिए अपनी सोच को मत गिराइये। किसी का दिया सम्मान आपका मान–सम्मान नहीं बढ़ा सकता है। आपकी कलम ही वो जादू कर सकती है। आजकल खुद पैसे देकर सम्मान खरीदे जाते हैं और खुद ही खबर बनाकर अखबार में छपवाते हैं। और फिर फेसबुक की वाल पर समाचार पत्रों को धन्यवाद ज्ञापित किया जाता है।

आपका लिखा एक एक शब्द आपके परिवार की अगली पीढ़ी को शर्मिन्दगी में भरता है या फिर आंखें उठाकर चलने को प्रेरित करता है वो आज ही आपको निर्धारित करना है।

चलिए देश के लिए लिखिए। नकली प्रतिशीलता के एजेण्डा लेखन को टाटा कीजिए। समाज के लिए सकारात्मक लिखिए, सकारात्मक कीजिए। ज्यादा प्रगतिशीलता के चक्कर में अपनी संस्कृति और संस्कार को लात मत मारिये क्योंकि यही लात वापस आकर आपकी अगली पीढ़ी को पड़ेगी। सौ प्रतिशत सच है कि ऐसा लेखन किसी न किसी एजेण्डा को लेकर ही लिखा जाता है। और सबसे महत्वपूर्ण बात है कि ज्यादातर लेखक अपनी निजी जिन्दगी की कोफ्त को परोसते हैं। आप तमाम लेखकों को देखकर पढ़कर समझ सकते हैं। आइये हम ऐसे लेखकों का जीवन पढ़कर पन्नों पर उतारें और एक नेक काम चुपचाप करें।

दमित इच्छा

कमली की तबीयत ठीक नहीं थी। काम ते सहयोग के लिए मुनिया को स्कूल न भेज कर अपने साथ लेकर मालिक के यहां आई थी। मुनिया को किचन के डिब्बों को पोंछकर रखने के लिए कहकर वह झाड़ू पोंछा बर्तन करने लग गई थी।

किचन के सामने से गुजरते हुए दिनेश की नजर काजू के डिब्बे के ढक्कन लगाती मुनिया पर पड़ी। रंगे हाथ पकड़ने की इच्छा से वहीं किनारे खड़े हो गये। मुनिया ने इधर–उधर देखा, फिर बादाम के डिब्बे को हाथ में लेकर बाहर साफ करने के बाद, ढक्कन खोलकर देखने लगी। दो मिनट तक वह देखती रही। फिर ढक्कन बंद करके ठीक उसी स्थान पर रख दिया। वैसा ही उसने किशमिश, चिरौंजी आदि मेवे के डिब्बों का भी किया। अंतिम डिब्बे का ढक्कन लगाते दिनेश की भारी आवाज मुनिया के कानों में टकराई–''मुनिया।''

उसके हाथ से डिब्बा गिरते गिरते बचा। वह डरते डरते मालिक के सामने आ खड़ी हुई। दिनेश ने पूछा–''सच सच बताना, तुमने कितना काजू निकाला था ?''

इतनी देर में कमली भी आ गई। सुनते ही उसने कहा–''मालिक हम लोगों की इतनी भी औकात नहीं है कि चोरी करके मालिक के मेवे मिष्ठान खा सकें। मुनिया मेरी बेटी है, मैं उसे अच्छी तरह से जानती हूं।'' इतना कह कर मुनिया को लेकर अपने घर आ गई।

मालिक का व्यवहार उसे अच्छा नहीं लगा। आते ही मुनिया को झापड़ लगाकर पूछा–''सच सच बता, मालिक ने उसे क्या करते हुए देखा था ?''

मुनिया ने सच सच बता दिया। कमली ने एक लम्बी सांस ली।

स्तर का सवाल

फेसबुक में एक समाचार वाइरल हो गया –''नगरनिगम के एक बड़े अधिकारी ने एक व्यक्ति से उसके घर के सामने की नाली साफ करवाने के लिए सौ रूपये की रिश्वत ली।'' जनता से ढेरों लाइक्स के साथ कमेंट भी आने लगे। थू–थू। सफाई व्यवस्था के ढोल में पोल। नाली की सफाई के बहाने जेब की सफाई। भ्रष्टाचार में मंहगाई बेअसर आदि आदि। नगर निगम के अधिकारियों के संघ के अध्यक्ष ने कमेंट किया– ''उसका स्तर इतना गिर गया है कि अब उन्हें संघ से ऐसे निकाला जायेगा, जैसे नाली से गंदगी निकाली गई।'' नगरीय मंत्री ने कमेंट किया–''जांच करवाता हूं।'' कुछ देर बाद उस अधिकारी का रोते हुए चेहरे का वीडियो भी वाइरलहो गया। एक शुभचिंतक ने पूछा–''ऐसे कैसे हो गया ? मैं तो ऐसा सोच भी नहीं सकता।''

अधिकारी ने कहा–''मैं भी मात्र सौ रूपये लेने की बात सपने में भी नहीं सोच सकता। अपने स्तर और सम्मान से समझौता करना भूलकर भी नहीं सोचूंगा। न हजार से कम लिया है न ही लूंगा। इल्जाम के घटिया स्तर के कारण रो पड़ा। अब तुम ही बताओ, सौ रूपये की रिश्वत लेने वाली बात भी कोई समाचार है ? यह दैनिक समाचार पत्र में तो क्या, लोकल साप्ताहिक में भी नहीं छपेगा।''

सत्य से साक्षात्कार

सरकारी स्कूल के विज्ञान के शिक्षक ने पाचन तंत्र पढ़ाते हुए समझाया–''खाना खाते समय या खाने के आधे घंटे के भीतर पानी पीना जहर के समान होता है। इससे काइम ठीक तरह से नहीं बन पाता, जिससे पाचन खराब हो जाता है।''

अपने स्थान पर खड़े होकर रिक्शे वाले का बेटा सुखिया ने कहा–''माफ कीजिएगा सर! आपकी बात आधी सही है। हम गरीबों का पेट तो थोड़ा खाकर ढेर सारा पानी पीकर ही भरता है। पाचन भी ठीक रहता है। नींद भी अच्छी आती है। बड़े आदमियों के लिए यह बात ठीक हो सकती है। जिनका पेट अकसर खराब रहता है। इसके कारण उन्हें अच्छी नींद नहीं आती, नींद की गोलियां खाते हैं।''

शिक्षक ठीक है, कह नहीं सकता था। मात्र सोच सकता था–''थ्योरी और प्रेक्टिकल में कितना अंतर हो रहा है।''

सुखिया सोच रहा था–''मैंने जो अंतर बताया, वह कितना सत्य है ?''

दोनों सोच रहे थे–''विकास की बातें होती है, पर वास्तव में कितना सत्य है ?''

शिक्षक ने जब यह बात प्राचार्य को बताई तब प्राचार्य सोचने लगा–''सुखिया जैसे बच्चे दिमाग से ज्यादा पेट से सोचते हैं।''

बालकृष्ण गुप्ता 'गुरू'
डॉ. बख्शी मार्ग,
खैरागढ़ (छ.ग.)
मो.–9424111454

बस्तर की प्रथम महिला शासक
बस्तर की प्रथम महिला शिक्षक

बी.एन.आर. नायडू
नायडू मेन्शन, मेन रोड़
जगदलपुर छ.ग.
मो.–9174448840

प्रबुद्ध पत्रकार साहित्यकार श्री राजीव रंजन के उक्त शीर्षक से फेसबुक में प्रसारित हुआ, तब लगता था कैसा यह अद्भुत शीर्षक था जिसमें बस्तर स्टेट की गौरवशाली विख्यात महारानी प्रफुल्ल कुमारी देवी और उनकी गुरु की बी माधवम्मा नायडू का संयोजन एक सिक्के के दो पहलू की तरह था। पुराने लोगों के दिलोदिमाग में यह बातें क्यों नहीं आईं जो इस युवा साहित्य सुधि के सामने आई। एकदम नया अप्रतिम तुलनात्मक संयोजन रहा। उनको जानने वाले लोग इस द्विपद नाम शीर्षक से आनंदित हुए। ये अद्भुत दो विभिन्न परिवेश स्तर को एक सिक्के की तरह ढालने का कार्य श्री राजीव रंजन जैसे बाजीगर ही कर सकते हैं। आत्मश्लाघी, दम्भी, अहंकारी लोगों को यह शीर्षक उद्भासित न कर पाए परंतु सात्विक, निर्मल, निश्चल लोगों को तो परितृप्त कर गया।

इस शीर्षक ने जंग लगे स्मृति कपाटों पर स्मृति प्रतिध्वनि की अर्गला सांकल की खट–खट से इस विषय में लिखने को बाध्य सा कर दिया। बस्तर महारानी, प्रथम महिला शासक प्रफुल्ल कुमारी देवी को अक्षर ज्ञान बाराखड़ी का परायण कराने वाली महिला बी माधवम्मा नायडू बस्तर स्टेट की प्रथम महिला शिक्षक थीं। उस समय, परिवेश में एक दक्षिण की महिला का अंग्रेजी ज्ञान तो ठीक परंतु हिंदी, उर्दू में निष्णात होना, विस्मयकारी ही लगता है। उनका नाम न शाला के अभिलेख में है न शाला में, परंतु जब शताब्दी समारोह इस शाला का मनाया गया तो उनकी तीन छात्राएं दिवंगत, उस समय जीवन्त प्रमाण या दस्तावेज की तरह उपस्थित रहीं। उनके संस्मरण में उनकी गुरु बी माधवम्मा नायडू थीं। ये महिलाएं श्रीमती सुनामणि रथ, श्रीमती चंदूमणि तथा श्रीमती प्रयागा शुक्ल थीं। शाला के उपलब्ध अभिलेख में एक अन्य दक्षिणी महिला इंदिरा जी का भी नाम है। आज उनकी यह तीनों छात्राएं दिवंगत हो चुकी हैं, परंतु बस्तर के पुराने घरानों में संस्मरण की तरह सुनने को मिलता है मास्टरिन अम्मा–माधवम्मा नायडू का नाम! उस समय जगदलपुर शहर उनको इसी संबोधन से जानता था, पुकारता था। शिक्षा अधिकारी स्वर्गीय श्री शिवराम दास उनकी धर्मपत्नी श्रीमती कौतुकमणि दास को भी उनकी बातें याद थीं। माधवम्मा की दिवंगत छात्राएं राजरानी बाई, पंडित सुंदरलाल त्रिपाठी की बहन श्रीमती तारुणीसिंह, सरस्वती श्रीवास्तव, दुबे परिवार की मातामही, प्रबुद्ध शिक्षाविद् श्री रामेश्वर प्रसाद की माता सुनामनि पांडे, सौहद्रा पांडे, चंद्रकला ठाकुर जब भी बैठती, अपने गुरु संस्मरण खजाने की स्मृति सिक्कों की खनखनाहट से शाम को देर रात में बदल देती थीं। स्वर्गीय सुंदर लाल त्रिपाठी, गंगाधर सामंत, गंगाधर दुबे, राजगुरु विद्यानाथ ठाकुर, राजवैद्य गंगाधर दास, रघुनाथ महापात्र उनके संस्मरण सुनाते थे। बस्तर इतिहास, संस्कृति, राजपरिवार के लेखा–जोखा के दस्तावेज, एकमात्र लाला जगदलपुर थे, आज वे भी ब्रह्मलीन हो चुके हैं। ऐसी विलुप्त स्मृतियों को युवा राजीव रंजन ने फिर से साकार कर दिया।

माधवम्मा नायडू अपने बड़े भाई मुनि स्वामी नायडू तथा भावज महालक्ष्मी के साथ बस्तर आईं संभवत 1894 का समय था। मद्रास रेजीमेंट में अर्काट, श्रीरंगम चिंगलपेट से कई परिवार अमृतसर, लुधियाना तक गए। रेजीमेंट के टूटने पर यह परिवार कई शाखा में बंटकर लखनऊ, भोपाल, नागपुर, चांदा तक बसकर फैलते गए। माधवम्मा का परिवार चांदा, अहेरी होते हुए बस्तर के परलकोट जमींदारी तथा भोपालपटनम जमींदारी में बच्चों को पढ़ाने लगी। उसी समय बस्तर स्टेट की राजकुमारी प्रफुल्ल कुमारी देवी की शिक्षा दीक्षा के लिए महिला शिक्षिका की आवश्यकता ने उन्हें जगदलपुर में प्रस्थापित कर दिया।

उस समय जगदलपुर छोटा सा कस्बा था परंतु बस्तर स्टेट पूरे छत्तीसगढ़ में प्रख्यात था। शायद 1916 का समय था जब माधवम्मा राजकुमारी को पढ़ाने जाने लगीं। महल से उन्हें लेने टांगानुमा परदा लगी गाड़ी आती थी। बस्तर स्टेट छोटा जरूर था परंतु सभ्यता, संस्कार, साहित्य, राजसी शिष्टाचार में राजपरिवार का स्थान संभवतः छत्तीसगढ़ में सबसे ऊंचा था। बालिका महारानी को प्यार और सम्मान के साथ सभी **'बाबी धनी'** संबोधित करते थे। महारानी 6 या 7 वर्षीया थी। अंग्रेजी प्रभुत्व व गरिमा के अनुरूप फ्रॉक, गाउन पहनती, वहीं लहंगा पोलका भी पहनती थीं जो उनके दक्षिणात्य मूल का प्रतीक था। उनके गहने भी दक्षिणात्य गठन के होते थे। महारानी और उनके गुरु के बीच मधुर राजकीय सौजन्य मंडित संबंध रहा। महारानी, माधवम्मा को **'गुरुजी'** कहतीं, उस समय बहन जी, मैडम का प्रचलन नहीं था। राजकुमारी की पठन–पाठन सामग्री मुंबई, कोलकाता तथा इंग्लैंड से आती थी। एक से बढ़कर एक आकर्षित करने वाली पोर्सलिन की रंग बिरंगी प्लेटें, मनकों की, गिनती सीखने के उपादान होते थे।

महारानी छोटी वयस से विनत्, विनम्र छात्रा रहीं। शिष्टाचार, संस्कार, राजकीय गरिमा स्वतः ही उनके व्यक्तित्व के प्रभासी आभामंडल को द्विगुणित कर जाते। नियत समय पर वह पढ़ने को तैयार रहती। प्रारंभिक शिक्षा के बाद भी गुरु शिष्या का संबंध नियमित बना रहा। महारानी का विवाह 1927 में हुआ। विवाह से पहले उन्होंने पूछा– 'गुरुजी! आप क्या करोगे ?'

गुरु ने महिला शिक्षा पर जोर देते हुए कन्याशाला चलाने की बात कही। महारानी ने अपने पिता रुद्रप्रताप देव द्वारा निर्मित भैरवगंज में बने भवन में कन्या शाला चलाने की आज्ञा दी। फलस्वरूप कन्याशाला का सूत्रपात हुआ और इस विद्यालय की प्रथम महिला शिक्षिका माधवम्मा बनीं। रियासती दौर में इस शाला में बस्तर के पुराने संभ्रांत परिवार की गिनी चुनी लड़कियां आती थीं धीरे–धीरे संख्या बढ़ने लगी। वर्तमान में यह छोटी–सी शाला, दो मंजिला भवन में परिवर्तित है।

महारानी प्रफुल्ल कुमारी देवी एक योग्य शासक, विद्या अनुरागी, दूरदर्शी प्रजावत्सल धर्मपरायण महिला थीं। अपने पिता की तरह महत्वाकांक्षी रहीं। अपने शासनकाल में अनेक योजनाओं का सूत्रपात उन्होंने किया। पिता की स्मृति में राजा रूद्रप्रताप देव लाइब्रेरी, टाउन हॉल, महारानी हॉस्पिटल, गेयर बाजार बनवाया। बढ़ते शहर को सुचारू रूप से चलाने के लिए टाउन कमेटी का निर्माण कराया। न्यायालय, राबर्टसन हाल, नया मोती महल बनवाया। जो निर्माण कार्य पिता ने किए थे उनके रखरखाव का समुचित कार्य, व्यवस्था पर ध्यान दिया। दशहरा भी शानदार होता था। महारानी जब रथ पर 1922 में पहली बार बैठी तो वो दशहरा अभूतपूर्व था, ऐसा बुजुर्ग बताते थे। रथ पर उनके साथ दो बालिकाएं भी बैठती थीं उनमें से एक उनके गुरु की शिष्या श्रीमती प्रयागा शुक्ला थीं वो महारानी की बालसखी थीं। दो तीन साल बाद यह प्रथा बंद हुई और इनका स्थान दो पुतलियों ने ले लिया। महारानी का राज्याभिषेक प्रयागा शुक्ला के पिता श्री तिवारी जी ने किया था।

बाद में अंग्रेज शिक्षक तथा महिलाओं ने भी उनकी शिक्षा–दीक्षा, राजसी अदब–कायदे की शिक्षा दी। बस्तर का राजपरिवार उन दिनों काफी समय तक लंदन में भी रहा। जो शायद छत्तीसगढ़ में ऐसा कोई राजपरिवार न था जो पूरे ब्रिटिश राजसी अदब–कायदे से वाकिफ रहा हो। उनके पति लंदन में पढ़ाई करते थे। बच्चे भी लंदन, शिलांग में पैदा हुए। अस्वस्थता के कारण उन्हें दो बार लंदन भेजा गया। 28 फरवरी 1936 को निधन हो गया। बस्तर रियासत का एक स्वर्णिम अध्याय भी इसके साथ समाप्त हो गया। उनकी गुरू भी दूरदर्शी, महत्वाकांक्षी, अनुशासनप्रिय, बाल मनोविज्ञान की ज्ञाता थी। माधवम्मा ने पढ़ाना शुरू किया तो गिनी चुनी छात्राएं ही थी। जब संख्या बढ़ने लगी तो उनकी शैक्षिक गतिविधियों के साथ पाठ्येत्तर क्रियाकलाप पर भी अपना ध्यान केंद्रित करना प्रारंभ किया।

आज जैसी विहंगम योजनाओं के विभिन्न रूप दिखाई दे रहे हैं वहीं बिना किसी तामझाम, नाम, विशेषण के योजनाओं को सार्थक स्वरूप का अमलीजामा पहनाकर छात्राओं के सर्वांगीण विकास का प्रतिरूप बनाया। पढ़ो–कमाओ योजना का एक सूक्ष्म स्वरूप उन्होंने शाला में ही रखा। छात्राओं को खाली समय में कार्य की गरिमा महत्व से, सहज, सरल ढंग से परिचित करा, उसकी उपादेयता, प्राप्त परिणाम एवं प्रमाण के रूप में मन–मस्तिष्क में ठोस स्थाई स्वरूप प्रदान किया। शाला में नारियल की फांक, लड्डू छात्राएं अवकाश के समय बेचती थीं। मुनाफे के रूप में एक धेला मिलता, जो खजांची छात्रा के पास जमा होता। इस व्यवसाय से छात्राएं जहां कमाने का गुर सीखती, वहीं धनलोलुपता के बदले उनकी कलात्मक अभिव्यक्ति को दिशा मिलती। माकूल रकम जमा होने पर जरी, धागे, रंग–बिरंगे पोत, मनके खरीद कर उन्हें, उनसे धार्मिक चित्रावली, बनाना सीखाती। जिनमें देवी, देवता दशावतार, हिंदू आस्था के प्रतीक नारियल, तुलसी, पारिजात, कदली, वट, पीपल, हरसिंगार का चित्रण होता। छोटे–मोटे सिलाई का काम भी सिखाती। पूरा हिसाब किताब रखने का काम भी छात्राएं करती।

बाल विधवा होने के कारण जीवन में कहीं कुछ अतृप्ति थी, उसे मार्गन्तीकरण की सहज परमार्थ क्रियान्यवन की प्रक्रिया से प्रत्यावर्तित कर तृप्त होती थी। बस्ती के लोगों की आस्था विश्वास की वह 'लॉकर' भी थीं। जहां न कोई स्ट्रांग रूम था न कोई गार्ड! उनकी खाट के नीचे कतारबद्ध पीतल की गुंडियों में लोगों के सोना चांदी के जेवर, दस्तावेज सुरक्षित रहते। जब भी कोई अपना माल लेने आता वो गुंडी जिसमें उसका सामान रखा होता उसे उलट देती और आदेश देती 'तेरा माल बीन ले, बाकी वापस रख दे।' उनके इस स्ट्रांग रूम से मजाल है कि कील भी गायब हुई हो। इसका उल्लेख दिवंगता श्रीमती बैसाखू शाह जब तक जीवित रही दोहराती थीं।

अक्षय तृतीया के दिन बड़ी–बड़ी रक्त–चंदन की लकड़ी की गुड़ियों का ब्याह रचाती। उनके गले में पीले धागे में सोने का मांगल्य प्रतीक चिन्ह 'ताली या बोट्टू' बांधती और किसी गरीब कन्या के ब्याह में दान कर देतीं। बड़ी–बड़ी लोहे की पेटियों में गुड़ियों का संसार था जिसे दशहरा में सजाती

खाली समय में चुप नहीं बैठती महिलाओं को जमाकर कुंकु बनाना, पत्तल दोना खूबसूरती के साथ सिलना सिखाती। बाद बाद में उनकी छात्राएं भी उनके पास आती और यही सब सीखतीं।

महिला होते हुए भी पुरुषोचित धीर गंभीर व्यक्तित्व, लंबा कद, गोरा रंग, लंबा चेहरा, हल्के चेचक के दाग, शुभ्र धवल वस्त्रा थीं। दक्षिणी प्रथा के विपरीत सफेद बड़ी सी चादर लपेटे रहतीं। सभी अंग ढके रहते, शायद यह भोपाल के रियासती दौर का प्रभाव था। पान की शौकीन थी हमेशा पान का डिब्बा उनके साथ होता। भाई की अकाल मृत्यु अल्पवयसी, बूटे से कद की सुंदर अनुज बहू और एकमात्र भतीजे के साथ स्वयं टूटकर भी गृहस्थी को संवारती रहीं। दक्षिण से जो रिश्ता टूट–सा गया था, प्रारंभ किया उसे पुनः जोड़ने का सिलसिला। जगदलपुर से चिंगलपेट गांव तक जाने में 6 दिन का समय लगता था। बड़ा कठोर अनुशासन एवं नियमित दिनचर्या घर पर थी। सुबह नियम से दो संत दढ़ियल महाराज कमंडल वाले (स्वर्गीय विश्वनाथ महापात्र के पिता) महादेव घाट के राममूर्ति बाबा आते। उन्हें उचित आसन देकर बैठाना, ध र्म–कर्म की चर्चा करना, नियम से ग्लास भर दूध, फलाहार देना। समसामयिक विषयों की चर्चा के बाद उनकी कठोर, कर्मठ दिनचर्या प्रारंभ होती। इन कार्यों में कहीं कोई चूक होती तो विधवा भावज की पीठ पर निर्मम छड़ी प्रहार से भी वो नहीं चूकतीं। तपस्वी सा जीवन, परोपकार, धर्म–कर्म, पूजा–पाठ, सदाशयता, अब तक बस्तर के पुराने संस्कारी, ईमानदार, सच्चे लोगों के बीच स्थापित कर सका है। दीन दुखी की सहायता करने सदैव तत्पर रहती।

अपने भतीजे को रायपुर भेजा पढ़ने, उनके साथ गंगाधर दुबे भी वर्तमान शासकीय हाई स्कूल रायपुर में पढ़ते थे। जगदलपुर से रायपुर पहुंचने में 10 दिन की का समय लगता था। वहां से इंजीनियरिंग की पढ़ाई के लिए अमृतसर भेजा। इंजीनियर बनाने का सपना चकनाचूर हो गया जब उन्होंने भतीजे को पुलिस की वर्दी में देखा। वह टूट सी गई, इस सदमे से उबरने में काफी समय लगा, ऐसा लोग बताते हैं।

1928–29 में वे रिटायर हुई। रायपुर स्थित अंग्रेज पोलिटिकल एजेंट से उन्हें पेंशन भी मिलती थी। 1936 तक ये पेंशन मिलती रही। संभवतः शिष्या महारानी प्रफुल्ल कुमारी देवी के निर्वाण के साथ वह भी बंद हो गई। ऐसे शिक्षकों के संस्मरण सुमरनी को हाथ में लेते ही अनेक परम श्रद्धास्पद गुरू साकार हो उठते हैं। श्याम धन गुरुजी, महावीर गुरुजी, प्रह्लाद गुरुजी, त्रिलोचन ठाकुर गुरुजी, बालगोविंद तिवारी गुरुजी, भिखारी राम गुरुजी, विमलेन्दु सर, रविशंकर दत्त सर, नत्थूलाल चतुर्वेदी (चौबे सर), जमुनाप्रसाद तिवारी सर, दाऊलाल दुबे सर, प्राचार्य देव सर, उमाशंकर तिवारी सर, पाध्ये सर, उनकी बहन पाध्ये बहनजी, सेन सर, मुखर्जी सर, सुरेंद्र चौबे सर, रमेश जोशी सर, वर्तमान में वाधक्य से नमित भार से इन सबके सद्गुणों को प्रतिनिधित्व करती एकमात्र श्रीमती कमला नाग बहनजी हैं। यह सभी कर्मठ वीतरागी साधुओं की तरह बस्तर के लोगों के मन मस्तिष्क में विराजित हैं।

आज शिक्षकों के सम्मान में कर्मयोगी, ज्ञानमूर्ति, सत्पुरुष की स्मृति में जो आयोजन किए जाते हैं मात्र वर्ष में एक बार 5 सितंबर को। शिक्षक दिवस का यह यंत्रवत, कठपुतली सम निष्प्राण, औपचारिक मंचीय परिवेशन चित्त को खिन्न अशांत ही करता है। वर्तमान में यह सम्मान राजनयिक द्वारा हो तो सात पुरखों की आत्मा तृप्त हो जाती है। वही लोबान, अगरू धूप सी मोहक पवित्र स्मृति सुगंध से, स्वनामधन्य शिक्षकों की देवोसम अलौकिक आभा से मन प्राण को शीतल ऊर्जान्वित करती है। शायद इसीलिए हम अपने धर्म कर्म एवं व्यवसाय को प्रांजल परिमलित, अक्षत रखने में सक्षम रहे। ऐसे गुरुजनों को जब भी याद करो सर बंदगी में झुक जाता है। माधवम्मा नायडू के बारे में ब्रह्मलीन दिवंगत व्यक्तित्व उनके बारे में बताते थे, दाऊ काशीप्रसाद, भुवनेश्वर प्रसाद अग्रवाल, उनका परिवार, श्रीमती पूर्णिमा अग्रवाल, क्रांतिकारी बिलख नारायण अग्रवाल की धर्मपत्नी, कचरूलाल दानी परिवार, जनाब इब्राहिम परकासेठ, मालगुजार सलाम साहब, उनके वालिद, हाजी सरदार खान, कंवरलाल सेठ, हिम्मतलाल दुग्गड़ सेठ, बुधमल लुंक्कड़ सेठ, मंगलप्रसाद बाजपेई, उनका परिवार, पाटनी कंपनी वाले पिल्ले, मुदलियार परिवार आदि।

बस्तर की प्रथम महिला शासिका ने अपने राजकीय परिचालन, सुनियोजन में अपनी मेघा, अद्भुत दूरदृष्टि से पूरे बस्तर में एक स्वर्णिम आयाम रचा, अपने राजवंश की ख्याति का परचम लंदन में भी फहरा आईं। वहीं उनकी गुरू अपने परिवेश में ही महिला शिक्षा की प्रेरणा बनीं। बस्तर जगदलपुर के पुराने सभ्रांत संस्कारी लोगों की श्रद्धेय रहीं। अपनत्व एवं प्रेम से लोग उन्हें मास्टरीन बाई कहते रहे। ऐसे व्यक्तित्व द्वय का स्मरण अतीत के गौरवशाली थाथी की तरह, मानस में अंकित है और रहेगा।

कवि सम्मेलन ऑन हाईवे

डॉ बी प्रकाश मूर्ती
प्रकाश 'पैमाना'
जगदलपुर बस्तर छ ग
मो.–9425345539

व्यंग लिखते लिखते कब मैं कवि और ग़ज़लकार बन गया मुझे पता ही नही चला, मेरे इस साहित्यिक रूपांतरण के लिए मैं खुद के साथ साथ 2–3 लोगों को इसका जिम्मेदार मानता हूं जो मेरे काफी करीबी है और हर वक्त मेरा भला चाहते हैं। पहले चरण में मेरा प्रवेश शहर के एक साहित्यिक गिरोह में करवाया गया जहां से मेरी काव्य गोष्ठियों में शिरकत शुरू हुई।

फिर धीरे धीरे मंच प्रस्तुति के अवसर मिलते गए तो उत्साहवर्धन बढ़ता गया। इन कार्यक्रमों के समापन पर लोगों की सकारात्मक प्रतिक्रिया मन के अंदर छुपे बैठे कवि और ग़ज़लकार को प्रस्फुटित होने देने के लिए पर्याप्त थी, जिस तरह बड़े शायरों का तखल्लुस होता है मैंने भी अपना तखल्लुस 'पैमाना' रख लिया था। एक दिन हमारे साहित्यिक गिरोह के अध्यक्ष महोदय का फोन आया कि–'पैमाना जी! आज शाम एक कवि सम्मेलन में शहर से 20 किलोमीटर दूर गांव में जाना है शाम 7 बजे निर्धारीत समय में पहुंच जाइयेगा।' जिस तरह प्यासे को सिर्फ कुँए और पानी से मतलब होता है ठीक उसी तरह कवि को केवल मंच और माइक से ही मतलब होता है। कार्यक्रम कहाँ है, कौन सुनने वाले हैं उससे उन्हें कोई मतलब नही होता। मैंने हाँ कर दिया और निर्धारित समय से आधा घंटा लेट अपने लक्ष्य पर शहर से 20 किमी दूर कार्यक्रम स्थल पर पहुँच गया। हमारे गिरोह के अध्यक्ष महोदय समय से आधा घंटा पहले पहुंच चुके थे जो चलती गाड़ी से ही मुझे दिख गए थे। उनके हाव् भाव से लग रहा था कि कार्यक्रम के आयोजक के साथ–साथ सम्पूर्ण व्यवस्था पर वे अपनी नियंत्रण स्थापित कर चुके है। गाड़ी खड़ी करने के बाद जब मैं स्टेज के करीब पहुंचा तो थोड़ा ठिठका क्योंकि अब तक वहां एक भी श्रोता नहीं पहुँचा था और हमारे कार्यक्रम के लिए बनाया गया 15 बाई 10 का स्टेज जहां खत्म हो रहा था ठीक वहीं से नेशनल हाइवे शुरू हो रहा था। मैंने आयोजक प्रमुख से दबी जुबाँ में पूछा–'साहब! आपने स्टेज को हाइवे तक पहुंचा दिया.... पब्लिक बैठेगी कहाँ ?' इतना सुनकर साथ खड़े दूसरे साथी कवि ने कहा पैमाना जी! पब्लिक है कहाँ ? जो बैठेगी।' बात में दम था फिर भी विचार किया गया कि अगर धोखे से भी पब्लिक आ गयी तो कहाँ बैठेगी ? क्या हाइवे पर ? इतना सुनकर आयोजक प्रमुख ने स्टेज की ओर अपनी आँखों से इशारा किया। मुझे समझते देर नहीं लगी कि आयोजक प्रमुख कह रहे हो कि –'पब्लिक आप लोगों के साथ ही स्टेज में बैठेगी।' मैं सहम गया एक तो कार्यक्रम के लिए पहुंचे कवियों की संख्या ही 8 से 10 है उसमे ही स्टेज भर जाएगा फिर पब्लिक बैठेगी कहां ? मेरी दुविधा को समझते हुए आयोजक प्रमुख ने कहा–'पैमाना जी! आप रात साढ़े आठ बजने का इंतजार कीजिये फिर देखियेगा।' मिनट दर मिनट गुजरता गया लेकिन दूर–दूर तक कोई श्रोता नजर नहीं आ रहा था। तभी 150 किमी दूर से आये कवि ने धीरे से कहा–'पैमाना जी! पब्लिक की गुंजाइश नहीं दिख रही है मैं निकलूं क्या ?' मैंने कहा–'साढ़े आठ बजे तक रुक जाइये।' वो मान गए, 8 बजकर 25 मिनट तक जैसा सन्नाटा पहले था वही सन्नाटा अपनी गिरफ्त वातारण में बनाए रखे हुए था। केवल हाइवे से गुजरती बड़ी बड़ी गाड़ियों के गुजरने की आवाज ही इस सन्नाटे को तोड़ पाती थी। तभी एक साथी कवि ने आयोजक प्रमुख से पूछा–' सर! आप कह रहे कि पब्लिक आएगी लेकिन सामने तो हाईवे है और दूर–दूर तक कोई मकान या गाँव की रोशनी भी नहीं दिख रही है पब्लिक आएगी कहाँ से ?' आयोजक प्रमुख ने वही पहले वाला जवाब दिया–'आप साढ़े आठ बजे तक रुक जाइये।' जैसे ही साढ़े आठ बजा, साउंड सिस्टम वाले ने गाने बजाने शुरू किया और देखते ही देखते 5 मिनट में स्टेज के आजू–बाजू, सामने 400 से 500 लोग पता नहीं कहाँ से आ गए और हाइवे के किनारे अपनी–अपनी गाड़ियों को रोककर उसमे बैठ गए। कुछ लोग नीचे जमीन पर ही बैठ गए। महिलाओं के लिए साइड में बैठने की व्यवस्था थी चारो तरफ अब पब्लिक ही पब्लिक थी। आयोजक प्रमुख ने हमारी तरफ मुस्कुराते हुए देखा हम सब भी मुस्कुराये जैसे बहुत प्यासे आदमी को कोको कोला की भरी बोतल मिल गयी। पब्लिक की तरफ ललचाई नजरों से देखते हुए मैंने धीरे से आयोजक प्रमुख से कहा–'साहब! आपके गांव में कवि सम्मेलन का इतना क्रेज है? इतने सारे लोग कवि सम्मेलन सुनने आये हैं? आयोजक प्रमुख ने कहा –'ये कवि सम्मेलन सुनने नहीं आये है।' मैंने पूछा–'तो फिर किसलिए आये है ?' आयोजक प्रमुख ने कहा–'ये सब डांस देखने आए हैं।' मैंने आश्चर्य से पूछा –'किसका डांस ?' आयोजक प्रमुख ने कहा –'आप लोगों का डांस और किसका डांस!' मैंने कहा–'हम लोगो को तो डांस आता ही नहीं है।' आयोजक प्रमुख ने कहा–'वो हम कुछ नहीं जानते, हमने आस–पास के गांव में यही बताया है कि जितने भी कवि और ग़ज़लकार आएंगे वो डांस कर करके अपनी ग़ज़ल और कविता सुनाएंगे।' मैंने अपने गिरोह प्रमुख की तरफ भय की दृष्टि से देखा, मेरे भय को पहचानते हुए अपनी शरारत भरी मुस्कुराहट देकर कहा–'करना पड़ता है पैमाना जी, पब्लिक के लिए सब करना पड़ता है।'

मिट्टी के दीये प्रतियोगिता में प्रथम

मिट्टी के दीये

बाजार में रखे मिट्टी के दीये
आपस में बातें कर रहे हैं।
हमने ही रोशन किया था
अयोध्या को
राम जब लौटे थे अपने घर।
हर युग में जलते रहे,
कभी मंदिर में,
कभी तालाब के माता देवाला में,
जलता रहा मैं हर घर के द्वार में।
आल्हा उदल की लड़ाई में
बड़े नांद के रूप में
रातभर जलता रहा,
सैनिकों को देखता रहा
दर्द को पीते हुये।
कभी तूफान में डटा रहा
मिलती रहे बाती की लौ
राहगीर को।
हजारों साल से
मिट्टी में दबा रहकर पुरातत्व को
इतिहास बताता हूं।
न बदलता है रुप
और न ही रंग मेरा।
आज मैं देख रहा हूं
लोग मुझे अपने घर ले जायें।
रंग बदल गया
युग बदल गया।
आविष्कार हो गया है
बिजली का!
अब सब जगह है रोशन!
आज भी बैठा हूं,
तालाब के किनारे,
माता देवाला में।
सुखरु के हाथ कांप रहे हैं
मुझे गढ़ते हुये।
सुना है बाजार अब मिट्टी के दीये
नहीं रखना चाहता।
खरीददार नहीं हैं।
अब कौन खरीदता है हमें।
चीन की लड़ियां मुस्का रही हैं,
अब तो हमारी जगह है,
पुण्य तिथि और पूजा में ही
दीवाली पर मालिक कुछ कमा ले
यह सोचना ही गलत है।
अब तो बस सुखरू की
चाहत ही बची है।
एक बार फिर हमारे दिन लौटेंगे।
तभी तो आस लगाये
हम लोग बाजार में बैठे हैं।
कांपते हाथों से सुखरू
आज भी हमें गढ़ रहा है।
धुंधली होती आँखों की रोशनी में
अपने बनाये
दीये की लौ को देख रहा है।

सुधा वर्मा
प्लॉट नं.–69 ''सुमन''
सेक्टर–1, गीतांजली नगर
रायपुर छ.ग.
मो.–9406351566

मिट्टी के दीये प्रतियोगिता में द्वितीय

देश की माटी हूं

दीया–
मुझसे ही शुरू हर पूजा–पाठ
मुझसे ही रोशन गंगा का घाट
मां मुझसे ही तो नजर उतारती
सुनो दिल से मातृभूमि है पुकारती...
मुझसे क्यूं मुंह मोड़ रहे
क्यूं नाता अब तोड़ रहे
मैं केवल एक दीया नहीं,
राम जन्मभूमि की माटी हूं।
अपने देश की माटी हूं।।

दीया–
मुझसे ही ज्ञान का प्रकाश,
मुझसे ही शुरू सारे उपवास।
मैं ही हूं प्रेम का प्रतीक,
मैं ही हूं राग संगीत।
मैं ही तो पूजा की आरती,
सुनो दिल से मातृभूमि है
पुकारती...
क्यूं अब ऐसे चूर हो रहे
क्यूं अब ऐसे दूर हो रहे
मैं केवल एक दीया नहीं,
मैं माँ भारती की माटी हूं।
मैं अपने देश की माटी हूं।

कुम्हार–
चाहता है वो सबका प्यार,
'दादा' वो है एक कुम्हार।
दीया न सिर्फ कलाकृति,
मकसद इतना फले संस्कृति।
मेहनत की रोटी है खाता
नहीं किसी से हाथ फैलाये
दीये से सब घर जगमगाये
इतना सा अरमान सजाये,
कड़ी धूप में बेच रहा है
दिल में कई दर्द छुपाये।
आओ हम सब हाथ बढ़ायें
दीये खरीद अपने घर लायें
ताकि उसका भी घर जगमगाए
उसका दिल भी बोलता होगा,
गाँधी के देश का वासी हूं
मैं अपने देश की माटी हूं।
दिया भी देश की माटी है
और मैं भी देश का माटी हूं।।

शंभु कश्यप 'दादा'
सुकमा छ.ग.
मो.–9406377737

मिट्टी के दीये प्रतियोगिता में तृतीय

मिट्टी के दीये

जब सूरज नहीं होता,
फैल जाता है अंधेरे का साम्राज्य,
मिट्टी के दीये टिमटिमाते हैं।
अंधेरा गलने लगता है,
पल–पल, तिल–तिल कर।
ऊपर अंबर में,
सजे होते हैं –
झिलमिलाते तारे।
अंबर जैसी ही, सज जाती है धरा
जगमगाते मिट्टी के दीयों से।
जब से, पनपी है सभ्यता
मिट्टी के दीये, तब से ही
सहचर हैं मनुष्य के।
हर अंधेरे के विरूद्ध
हथियार होते हैं
मिट्टी के दीये।
मिट्टी के दीये,
कहीं दीप हैं, कहीं आरती
कहीं पर रोशन चिराग हैं।
मिट्टी के दीये,
पावन होते हैं प्रकृति की तरह
हर यज्ञ में, सम्माननीय हैं,
मिट्टी के दीये।
आओ, घर को, मंदिर को
द्वार और चौराहों को
मिट्टी के दीयों से सजाएँ।
जो हाथ बनाते हैं
मिट्टी के दीये,
उनके जीवन में भी
अपनी खुशियाँ फैलाएँ।।

राजकुमार पाण्डेय
चारामा, कांकेर
मो.–9691442209

मिट्टी के दीये प्रतियोगिता में चतुर्थ

मिट्टी के दीये

दिवस का अवसान समीप था
पड़े थे घर में लाले
बच्चे थे नादान, रोते थे भूख के मारे।
चूल्हा न जला था आज उनके घर
भटक रहे थे वे दर बदर।
मां थी बीमार और पिता चले थे
रोशन करने औरों का घर!
सोच रहे थे वे बैठे–बैठे
यदि न बिके ये मिट्टी के दीये
तो क्या खाएं क्या पीयें।
कई लोग आते थे और देखकर चले जाते थे।
इस मिट्टी के शक्ति स्वरूप दीये की तुलना
उस कमजोर चाइना लाइट से कर जाते थे।
उसने भरी आवाज में बस इतना कहा कि
'जब बिजली हो जायेगी गुल
तो यह लाइटें लगेंगी धूल।
तब यह मिट्टी का दीया
खुद जलकर रोशन करेगा
आपके घर का हर कोना
और जब रोशनी होगी आपके घर में
तो चूल्हा जलेगा मेरे घर में।
भले ही यह दीया आपके लिए
मात्र प्रकाश का माध्यम है
पर मेरे लिए यह मिट्टी का दीया
मेरे जीवन में प्रकाश कर जायेगा।
और मेरे बच्चों की भूख का
नाश कर जायेगा।
मना न पाऊं भले दीवाली
मैं घर पर दीपक जला कर,
पर अपने दिल को क्या समझाऊं
अपने कुल बाती और कुल दीपक को
भूखा सुलाकर!'
तभी एक दीपक उठकर बोला
'मैं भी मिट्टी भी तू भी मिट्टी
मुझमें तुझमें कोई भेद नहीं।
मेरा जन्म हुआ रोशन करने दुनिया को
तो क्या मेरे जन्मदाता
तेरे जीवन को कोई अर्थ नहीं ?'
तभी एक आवाज उसके अंदर से आई
'कोशिश करूंगा आखिरी सांस तक
हर खुशियां उनको दे पाऊं,
खुद जलकर दीये की तरह
अपने कुलबाती और कुलदीपक का
जीवन रोशन कर पाऊं।

मधु चांड़क
प्रतापगंज पारा,
जगदलपुर छ.ग.
मो.–8319440551

मिट्टी का दीया **मिट्टी के दीये प्रतियोगिता में पंचम**

मैं दीया हूँ मिट्टी का, कुम्हार की कला हूँ
करने दुनिया में उजाला, तेल बाती संग जला हूँ।
न थे तार, न थी बिजली की दूर तक निशानी,
मेरे उजाले में थी सुनाती, नानी–दादी परियों की कहानी।
ढ़लता जब सूरज देर शाम, अंधकार हो जाता
तब घरों में जलना मेरा, सार्थक साकार हो जाता।
दिखता हूँ अब मैं केवल, पूजा और आरती की थालियों में
झालरों के तार में, खो रही रोशनी मेरी दीवालियों में।
रचयिता मेरा आजीविका का सम्मान, क्या न अब पायेगा
फिर कौन सूरज को दीया दिखाने की बात बतलायेगा।

खुश्बू जामड़े
बस स्टैण्ड के पास
गीदम छ.ग.
मो.–9111029942

छाया

मनीष कुमार सिंह
एफ–2, 4/273, वैशाली,
गाजियाबाद, उ प्र
पिन–201010
मो–8700066981

शहर काफी बड़ा था। हर बड़े शहर की तरह यहां भी हर ओर लोग ही लोग थे। सब एक दूसरे को अनदेखा करके अपने गंतव्य की ओर बढ़ते जाते। किसी की नजर किसी से जुड़ती नहीं थी। हालांकि चलते वक्त कभी–कभार जरुर टकरा जाते थे। ऐसा होने पर वे एक दूसरे से माफी मांगने के लिए रुकते नहीं थे।

लोगों के एक जगह से दूसरी जगह जाने के लिए बसें, ऑटो, टैक्सी, प्राइवेट गाड़ियां बड़ी तादाद में थीं। सड़कें अजगर की तरह दूर तक पसरी रहतीं। कितना भी ट्रैफिक ऊपर से गुजर जाए ऊफ तक नहीं करतीं।

हर वर्ग के लोग यहां रहते थे। शहर सभी को उनकी आमदनी और कार्य के हिसाब से जीने की सहूलियत देता था। इसलिए तो आलीशान कोठियों–बंगलों व आरामदायक फ्लैट के साथ अवैध कॉलोनियों की दुर्गंधयुक्त नालियों के किनारे बसेरे थे। झुग्गियों में मानवता का एक भाग पांव सिकोड़कर पनाह लेता। सड़क व बाजार में ये सभी नजर आते। इसका यह मतलब नहीं कि शहर समावेशी था। दरअसल प्रत्येक व्यक्ति अलग–अलग जी रहा था। सबसे अलग होकर।

मैं खुशकिस्मत था जो एक ठीक–ठाक नौकरी पा गया। शहर के केन्द्र से कोई दस–बारह किलोमीटर दूर रिहाइश भी सही थी। किराया वाजिब एवं जेब के अनुकूल था। बड़े शहरों के लिए दस–बारह किलोमीटर क्या चीज है। लोग दूसरे शहरों से रोज काम पर आते हैं। सड़क के दोनों ओर सजी–धजी दुकानें व शोरुम मन को ललचा रहे थे। वैसे बाहर फुटपाथ पर भी सामान बिछाकर लोग बेचने के लिए मौजूद थे। मैं दूर से ही अपनी हैसियत और जरुरत की चीजें भांपने की कोशिश कर रहा था। एक शोरुम के सामने खड़ा होकर शीशे के पीछे सजायी शर्ट और टाई निहारने लगा। देखने में कोई बुराई नहीं है। विंडो शॉपिंग हो जाएगी। हिम्मत करके कुछ देर बाद अन्दर चला गया। उस दिन अच्छे कपड़े धारण कर रखे थे। दूसरे ग्राहकों में व्यस्त होने के बावजूद सेल्समैन ने मेरी तरफ देखा। एक मुस्कान भी फेंकी। मैं उपेक्षा से जितना आहत होता हूं उतना ही स्वागत से भी घबराता था। पहले से तैयारी करके नहीं आया था कि क्या कहना है। फिर भी कुछेक शर्ट उलटे–पुलटे। यहां सेल्समैन की व्यंग्य भरी मुस्कान मन पर क्षणिक घाव लगाती है पर एअर कंडीशण्ड शोरुम से बाहर आकर हम पूर्ववत हो जाते हैं।

आज खाली होने के कारण मैं भरे बाजार से निकल कर अपेक्षाकृत खाली सड़क पर टहलने लगा। निरुद्देश्य नहीं बल्कि तफरीह के लिए। सहसा लगा कि एक आदमी मेरे पास चल रहा है। मैंने ध्यान नहीं दिया। आखिर मेरी ओर भी कौन ध्यान देता है। लेकिन जब यह लगा कि वह व्यक्ति अपनी निगाहें देर से मुझ पर गड़ाए भी हुए है तो जाहिर था कि मैं आशंकित हो उठा।

पलट कर उसकी तरफ देखा तो पाया कि वह मुझे ताक रहा था। पूछने का मन हुआ कि कहिए क्या बात है। वह व्यक्ति खुद बोला। 'लगता है कि आपको पहले देखा है।' मैं चौंक कर सावधान हो गया। यह क्या बला है? जेबकतरे वगैरह भीड़ में हाथ की सफाई दिखाकर अन्तर्ध्यान हो जाते हैं। राहजनी करने वाले इतनी देर में अपना काम करके निकल जाते। यह शख्स। तो पीछे पड़ा हुआ है। जरुर कोई ठग होगा। खैर! मैं कौन सा मूर्ख परदेशी हूं जो उल्लू बना देगा। फिर वह भी अकेला और मैं भी। उसका कोई दूसरा साथी नहीं दिख रहा था।

मैंने बेहद गंभीरतापूर्वक रुखाई से कहा, 'जी नहीं! आपको गलतफहमी हुई है। मैं आपको नहीं जानता।' मुसीबत सर पर पड़ने पर इंसान काफी साहसी हो जाता है। सहसा मैंने पाया कि शहर बिल्कुल सुनसान हो गया है। वक्त पर यहां कौन किसकी मदद करता है।

वह फिर भी साथ चलता रहा। मैंने गौर किया कि वह लगभग मेरी कद–काठी का था। शायद उन्नीस ही होगी। कपड़े थोड़े गन्दे थे। अगर इतना ही रसूख वाला होता तो क्या ऐसे किसी के पीछे पड़ता। देखा जाए तो वह कोई इतना बड़ा दादा टाइप नहीं दिखता था। लेकिन चार सौ बीस होने की आशंका से इंकार नहीं किया जा सकता था। मैं सतर्क था। शाम ढलकर रात का रुप ले रही थी।

'इंसान इंसान पर भरोसा नहीं करता है।' उसी ने पुनः शुरुआत की।

'सो तो है।' मेरे मुंह से भी निकल गया। 'लेकिन इसमें किसी का क्या दोष। वक्त ही ऐसा है। किसी का जान–माल सुरक्षित नहीं है।'

वह सहमति में सर हिलाने लगा। अंधेरे में मुझे वह ज्यादा जरुरतमंद लग रहा था। शक्ल ध्यान से देखने पर उसकी दाढ़ी दो दिन की बढ़ी हुई दिखी। आदमी उम्रदराज था। कनपटियों के बाल खिचड़ी हो चुके थे।

एक गली में घुसकर मैं चाय की दूकान पर खड़ा हो गया। वह भी रुक गया। बेंच पर बैठकर मैंने दुकान वाले से चाय को कहा। पेशोपेश में था कि उसे चाय के लिए पूछूं या नहीं। आखिर कौन सा उसे जानता हूं। वह खुद ही बेंच पर बैठ गया। दुकानदार ने हमें साथ देखकर बिना कहे एक नहीं दो कप थमा दी। 'भाईसाहब!' वह शिष्ट लहजे में बोला। 'मेरा एक दोस्त बिलकुल आपके जैसा है। माफ कीजिएगा। शुरु में इसलिए पहचानने में गलती हुई। मुलाकात हुए काफी समय गुजर गया। हम लोग इकठ्ठे काफी वक्त गुजारा करते थे।'

'वह क्या आपके साथ काम करता था?' मैंने यूं ही पूछ लिया। 'अरे नहीं!' उसने चाय की चुस्की लेनी प्रारम्भ कर दी थी। 'बस हम ऐसे ही मिलते थे। कोई कारोबारी बातें नहीं होती। अपने–अपने मन की बातें करते। घंटों। जी हां...। जो बातें इंसान पत्नी–बच्चों, मां–बाप से नहीं कर पाता वे सब हम एक–दूसरे से करते थे।' वह दूर कहीं नजर गड़ाकर मुस्करा रहा था।

'मन का मीत कहिए।' मैं यह सब सुनकर हठात् बोल उठा। उसने चाय का कप नीचे रखकर तर्जनी हिलाते हुए कहा। 'हां, बिल्कुल सही कहा। ऐसा ही दोस्त था मेरा।' वह मानो उदास हो गया। 'ऐसी न जाने कितने कप मैंने उसके साथ पी थी। समझिए कि चाय पीना एक बहाना था। साथ में कभी एकाध मठरी खा ली। बात साथ वक्त गुजारने की थी।' वह विगत को वर्तमान में जीने का प्रयास कर रहा था।

'दुनिया में एक भी अगर इस लायक मिल जाए जिससे मन की बात कह सके तो जिंदगी खाली–खाली नहीं लगती। वह भी आपकी तरह बिल्कुरल फिलॉसफर था।' वह जोर देकर बोला।

'मैं और फिलॉसफर...?' मुझे ताज्जुब हुआ। 'मतलब आप भी गहरी बात करते हैं।'

'स्कूल में भी आपका कोई साथी होगा?' मैंने पूछा।

'जी ढ़ेर सारे थे। बात यह है कि बचपन में पूरा स्कूल का कैम्पस, घर का अहाता, सड़कें ओर गलियां–पूरा माहौल मेरा साथी था। सच पूछिए तो बचपन में हम सबका आसपास के माहौल से अपनापन होता है। बाद में सब बदल जाता है।' चाय की दुकान की मंद रोशनी में वह अब किसी भी दृष्टि से संदेहास्पद नहीं प्रतीत हो रहा था। उलटे मुझे उसमें अपना अख्स दिख रहा था।

'मेरा बचपन तकलीफ में बीता।' वह बिना पूछे अधिकारपूर्वक कहने लगा। 'घर में गरीबी थी। आमदनी का जरिया बढ़ाने के लिए पढ़ाई के साथ मुझे काम पर भी लगना पड़ा। एक रोज की बात है पार्क में दोपहर को थक कर सो गया था। वहां ताश खेलने वालों की मंडली बैठती थी। उन्होंने टांग खींचकर मुझे दूर कूड़े के ढ़ेर के पास कर दिया। मैं बेखबर सोया रहा। बाद में शाम को पुलिस वाला आया और दो डंड़े जमाए। बड़ी मुश्किल से ईमान की दुहाई देकर मैं हवालात जाने से बचा। नहीं तो मां–बाप को जमानत कराने में एकाध बचे गहने बेचने पड़ जाते। जेब में पड़ी चने की पुड़िया तक वे ले गए।' सहसा वह मुझे बेहद गरीब लगने लगा।

उसने आगे सुनाना शुरु किया। 'अपने उस दोस्त की संगत में मुझे पुरानी उदासी वाली यादों से छुटकारा मिलने में काफी मदद मिली।' मैंने चाय के पैसे अदा करने के लिए जेब में हाथ डाला। 'नहीं।' उसने चाय वाले को हाथ से इशारा किया। 'बाबूजी से पैसे मत लेना।' सचमुच में उसने मेरे पैसे नहीं लिए। उस आदमी के पकड़ाए नोट को रख लिया।

हम दोनों साथ उठे। वह अभी भी चल रहा था। पर अंदाज जुदा था। अब वह अपने रास्ते जाना चाहता था। सड़क के किनारे गलियां मिलनी शुरु हो गयी थीं। 'आपका दोस्त अभी कहां है?' मेरे इस प्रश्न के उत्तर में वह हंसा। 'पता नहीं बाबूजी कहां पर है...आज मुझे वह आप में दिखा।' वह एक गली में घुस रहा था। मैं उसे जाते देखता रहा।

उसने मुझमें अपने अतीत के दोस्त को देखा था। पर मैं उसे जाते वक्त उसमें स्वयं को देख रहा था। उसके चले जाने के बाद सड़क का सूनापन मन के रीतेपन का ही स्वाभाविक विस्तार लगा। नीरवता कह रही थी कि मानो वह कभी था ही नहीं। पर मन के किसी कोने में यह लग रहा था कि वह हमेशा ही था। शहर में उसके और मेरे जैसे बहुत से होंगे जो ऐसे ही किसी दोस्त को ढूंढ़ रहे होगे या जिन्हे दोस्त की जरुरत है।

काश

डेंगू से देवर के 30 वर्षीय पुत्र विनय की अकाल मृत्यु से थर्राया उनका ससुराल ....तेरहवीं के कर्मकांड, भोज आदि से निपटते ही पुष्पा के पिता हाथ जोड़कर खड़े हो गए।

'इजाजत दें, पुष्पा को साथ ले जाने की।'

उन्होंने चकित हो पुष्पा के पिता की ओर देखा–'अरे, यह क्या कह रहे हैं आप! इस घर की बहू है वह। हमारे साथ महिला आश्रम के कामों में हाथ बंटाएगी।'

पुष्पा के पिता उनका बहुत मान सम्मान करते थे। अपने बल पर उन्होंने बाल विधवा होकर भी बड़े साहस, मुश्किलों और लानत मलामत के बाद अपने दिवंगत पति की जायदाद का हिस्सा पाया था। महिला आश्रम खरीदकर उम्र भर का अकेलापन विधवाओं और तलाकशुदा महिलाओं से बांटते हुए गहरी संतुष्टि से वे भरी रहतीं कि कम से कम परजीवी होकर तो नहीं रह रही हैं। पुष्पा के पिता थोड़ी देर खामोश रहे।

'नहीं बहन जी, अभी उसकी उम्र ही क्या है! पूरा जीवन पड़ा है। उसके भविष्य का हमें सोचना है। अभी घाव ताजा है पर समय बीते देर नहीं लगती। भगवान एक दरवाजा बंद करता है तो दूसरा खोल भी देता है।'

यानी दूसरा विवाह?? उन्होंने विस्मय से पुष्पा के पिता की ओर देखा। मन में एक हौल सा उठा।

काश, उनके लिए भी किसी ने इस तरह सोचा होता।

औरंगजेब

गाइड बता रहा था–'इस छोटे से झरोखे से शाहजहाँ ताजमहल का दीदार करते थे। गद्दी पाने की चाह में औरंगजेब ने चालाकी से उन्हें इस महल में ताउम्र नजरकैद रखा था । उसका कहना था कि अपने प्रेम को जीवित रखने के लिए शाहजहाँ ने ताजमहल बनवा कर करोड़ों रुपए बर्बाद किए, शाही खजाना खाली कर दिया। मुगल हुकूमत का अस्तित्व संकट में आ गया।'

उसके साथी आपस में कहने लगे कि कितना अत्याचारी था औरंगजेब अपने ही पिता को कैद कर लिया।

रजत जहाँ के तहाँ मूर्तिवत खड़ा था। साथियों के इस वाक्य ने उसे बेचैन कर दिया था।

उसके पिता शहर के करोड़पति व्यापारी उमेश राय..... पांच सितारा होटलों की चेन पूरे उत्तर प्रदेश में फैली है उनकी। उमेश राय साहित्यकारों की बहुत मदद करते हैं। साहित्यिक आयोजनों के लिए होटल का कॉन्फ्रेंस रूम और चाय नाश्ता स्पॉन्सर करते हैं। शहर के बुद्धिजीवी वर्ग ने उन्हें दानवीर, खुले हाथों मदद करने वाले आदि विशेषणों से नवाजा है।

पिता के खर्च को धन लुटाना समझ कर रजत ने चालाकी से उनकी संपूर्ण संपत्ति अपने नाम करवा कर उनसे कहा–

'आप तो दोनों हाथों से धन लुटाते हैं पिताजी! इस तरह तो व्यापार ठप्प हो जाएगा। वैसे भी अब आपकी भजन पूजन की उम्र है। मैं संभालता हूँ व्यापार।'

उन्हें अब अपने घर में बेबस सा रहना पड़ रहा था। रजत ने मानो उनके हाथ बांध दिए थे।

उसके साथी उसे आवाज दे रहे थे–

'चलो रजत ,अभी तो पूरा किला घूमना बाकी है।'

लेकिन कहाँ है रजत वहाँ तो औरंगजेब खड़ा है।

संतोष श्रीवास्तव
505 सुरेन्द्र रेजिडेंसी
दाना पानी रेस्टारेंट के सामने, बावड़ियां कलां
भोपाल 462039 (म प्र)
मो .09769023188

करिश्मा

आज फिर पूजा घर से जोर जोर से घंटी बजने की आवाज आ रही थी। गौरी ने झांक कर देखा। अम्मा तेजी से आरती का दीपक राधा कृष्ण की मूर्ति के चारों ओर घुमाते हुए बड़बड़ा रही थीं।

'हे भगवान! मेरे ही भाग में यह सब लिखना था। विलायती बहू इतना सुना देती है और तुम बैठे देखते रहते हो।'

गौरी भी तंग आ गई थी। उसका बीकॉम का फाइनल ईयर था और जेनी भाभी अम्मा से लड़ने में बाज नहीं आती थीं। अम्मा की समझ में तो जैनी भाभी की अंग्रेजी आती नहीं थी। वे छोटे भैया से पूछतीं। भैया जो बताता उसे सुनकर वे जेनी भाभी पर खूब चिल्लातीं और रोतीं। आज अम्मा ने गौरी से ही पूछ लिया–

'बता क्या कह रही थी वह। तेरा भैया ले आया विलायती बहू ब्याह कर। और मेरे सिर पर ला बैठाया। उसे तो तमीज ही नहीं है बात करने की। बता क्या कहा उसने।'

गौरी ने पल भर सोचा फिर मुस्कुरा कर बोली–

'नाहक परेशान होती हो अम्मा, कितनी तो अच्छी है जेनी भाभी। वह तो तुम्हारे लिए भला ही कह रही थी कि अम्मा जी कितनी प्यारी हैं। विदेश का होकर भी मुझे ऐसे अपनाया है जैसे मैं उनकी बेटी हूँ। और तो और अम्मा, वो तो आपके हाथ के बने अचार पापड़ की भी खूब तारीफ कर रही थीं। कल के कोफ्ते भी उन्हें बहुत पसंद आए थे। कह रही थीं अम्माजी के हाथों में जादू है।'

अम्मा की आँखे चमकने लगीं।

'ऐसा कह रही थी सच्ची बता।'

'और क्या झूठ बोलूंगी।'

'गौरी तू तो मुझे आज से ही अंग्रेजी बोलना सिखा दे। कम से कम अपनी बहू से बतिया तो सकूंगी।'

एक बड़े तूफान को ढकेल कर गौरी मुस्कुरा रही थी।

सिर्री

अबीर आनंद
वडोदरा गुजरात

वह गिर पड़ा। अपनी गली में घुसने से ठीक पहले, चौड़ी सड़क के किनारे बहती हुई नाली के पास, वह गिर पड़ा। गर्मी से बेहाल झुलसे हुए दिन की शाम ढल चुकी थी। दोपहर की अपेक्षा तपिश कुछ कम हो गई थी पर उसकी आँखें, वातावरण में उत्पन्न होने वाले उस भभके ने खोलीं, जो उसके इर्द गिर्द जमा हुई भीड़ द्वारा हवा के अवरुद्ध से जन्मा था।

"शराब पिये है...!"

किसी ने चलते चलते अपना आँकलन प्रस्तुत किया।

"बास तौ नाय आय रई...!"

किसी ने झुकते हुए उसके चेहरे पर अपनी नाक रखी।

"कपड़ा तौ ढंग के पैरे है...!"

"सिर्री–उर्री है का?"

उसके चेहरे पर पसीने की उभर आई बूँदों ने जब उसे उठने की चेतावनी दी, तो वह एक झटके में खड़ा हो गया।

"सिर्री–उर्री है का?"

उसने किसी को कहते हुए सुना। और गली में घुस गया।

दरवाजे की घंटी बजी तो उर्मिला ने दरवाजा खोला। लगभग तयशुदा दिनचर्या की तरह वह अपनी रसोई की ओर बढ़ी ही थी, कि उसने अपने पति की पतलून पर सूखी मिट्टी के कुछ बचे हुए धब्बे देखे।

"ये पैंट कहाँ से गंदी कर लाए?"

उसने अपने चेहरे पर चिपके हुए पसीने की आखिरी खेप को अपने हाथों से पोंछा। उर्मिला अपनी रसोई में वापस आकर, चिमटे में फंसे हुए तवे को गैस चूल्हे की आँच पर रखने लगी। दफ्तर का बैग मेज़ पर रखकर वह अपनी कमीज के बटन खोलने लगा था। पिछले कई वर्षों से चली आ रही थी, उर्मिला के तवे के साथ उसकी कमीज के बटनों की बंदिश। इधर उसके बटनों का खुलना और उधर, उर्मिला के तवे पर रोटियों का फुदकना।

उर्मिला के उस औपचारिक प्रश्न को अनसुना करते हुए, वह बेडरूम में घुस गया। अपने 6 साल के बेटे को उसने टीवी में उलझा हुआ छोड़ दिया; कपड़े उतारे और तौलिया उठाकर बाथरूम का दरवाजा खोला। एक पल ठहर कर उसने उस ग़र्दभरे पैंट को निहारा और बाथरूम का दरवाजा अंदर से बंद कर लिया।

"कल मुझे विनय के स्कूल जाना है। पीटीएम है। अगर आप ऑफिस से छुट्टी निकाल के आ सको, तो आ जाना।" तवे से आखिरी रोटी उतारते हुए उर्मिला ने कहा।

नहाने के बाद वह अपने कपड़े बदल चुका था। मोबाइल में कुछ ठकठकाते हुए उसने फिर उर्मिला को अनसुना किया। उर्मिला इस उपेक्षा से परिचित थी। वह खाना परोसने लगी।

"ये साले टेलिकोम वाले भी.... बस चूतिया बनाने में लगे रहते हैं।"

उसने मोबाइल दोबारा अपने कान पे लगाते हुए कहा।

"हलो, हाँ मैं सुनील बोल रहा हूँ। मेरे फोन में इंटरनेट नहीं चल रहा। क्या दिक्कत है?"

"आप कहाँ से बात कर रहे हैं।"

"अपने घर से।"

" जी.. मेरा मतलब है, आपकी लोकेशन क्या है?"

"यहीं भारत में ही है। जब आप अपने विज्ञापनों में छह लाख गाँवों को कवर करने की डींगें हांकते हो, तब याद नहीं आता कि मेरी लोकेशन क्या है?"

कस्टमर केयर अधिकारी पर सुनील अपनी कुंठा उगलते हुए बोला।

"सर, आपको अभी सिग्नल के कितने टॉवर मिल रहे हैं?"

"सारे के सारे मिल रहे हैं।"

"सर, एक काम कीजिए। आप अपने मोबाइल फोन को बंद करके दोबारा चालू कीजिए।"

"कर के देख चुका हूँ, कुछ फर्क नहीं पड़ा।"

"ओके, सेटिंग्स में जाइए..."

"सेटिंग्स में जाके मेन्युअल से आटो, नेटवर्क सेलेक्शन, सब कर चुका हूँ। कुछ नहीं हुआ।" सुनील ने उसे बीच में टोका।

"सर, फिलहाल मैं आपकी कंप्लेंट रजिस्टर कर लेता हूँ। अड़तालीस घंटों के अंदर हम आपकी कंप्लेंट पर कार्रवाई करेंगे।"

"आप लोगों का ये हर हफ्ते का नाटक है...! क्या...प्रोब्लम क्या है?" सुनील ने फिर अपनी कुंठा दिखाई।

"सर, मैं अभी कुछ भी नहीं बता सकता। मुझे ऐसा लगता है कि आपकी लोकेशन, मतलब आपके घर की लोकेशन नेटवर्क की पहुँच के बाहर है।"

"मेरा घर तो खुद मेरी पहुँच के बाहर है, शायद आपके नेटवर्क की कोई गलती नहीं है।"

सुनील ने मन ही मन सोचा, और इससे पहले कि कस्टमर केयर अधिकारी धन्यवाद की औपचारिकता पूरी करता, सुनील ने खुद फोन काट दिया।

उर्मिला जानती थी कि ये गुस्सा क्यों है, और किस पर है। वह समझती थी कि आमतौर पर शांत स्वभाव के सुनील

का पारा किस बात पर चढ़ा हुआ था। पर चाहक़र भी वह उसकी किसी तरह की कोई सहायता करने की स्थिति में नहीं थी।

"बुना ही क्यों आखिर एक घर का सपना? क्या बुरी थी ज़िन्दगी किराये के घर में? अच्छी खासी कमाई है पति की। सब कुछ तो था, एक घर न भी होता तो क्या हो जाता?"

उर्मिला मन ही मन सुनील की छटपटाहट बाँटने की कोशिश करने लगी। खाना खाने के बाद अपने बर्तनों से निपटकर, टीवी के सामने बैठे हुए विनय को गोद में उठाया, तो वह कुनमुनाने लगा। अपने आँचल में भरके उसने विनय के विरोध भरे स्वर को क्षीण किया, और टीवी का बटन ऑफ कर दिया। कपड़े बदल कर सुनील बिस्तर पर लेट चुका था; और बहुत देर से एक ही भंगिमा साधे, सिरहाने बिस्तर के ठीक ऊपर लगी एलईडी लाइट को निहार रहा था।

"लाइट बंद कर दूं?" उर्मिला ने सुनील का ध्यान हटाने की कोशिश में पूछा। और विनय को अपनी गोद से उतारकर बिस्तर पर लिटा दिया। सुनील ने बस 'हाँ' में अपना सर हिलाया। एक अजीब सी परिस्थिति थी। जैसे बैलगाड़ी का पहिया एक विशाल पाषाण के आगे विवश हो। क्या वह पर्याप्त संवेग दे सकेगी? और यदि दिया, तो क्या उस झटके को सहने करने की क्षमता है, उसकी बैलगाड़ी में? वह देख रही थी उस पाषाण से पार पाने के लिए संघर्ष करते हुए उस बैल को। कहीं वह कमजोर न पड़ जाए।

"मैं चली जाऊँगी कल विनय के स्कूल।" उसने सुनील के बालों में हाथ फेरते हुए कहा।

"मुझे कुछ काम है, ऑफिस का। मैं निपटा लेता हूँ....तुम सो जाओ।" सुनील ने उर्मिला को संबोधित करते हुए शाम के प्रथम शब्द कहे थे। ऐसे हालात में उर्मिला के लिए इतना बहुत था। वह जानती थी कि सुनील का कौन सा काम बाकी था। पिछले एक महीने से सुनील वही एक काम निपटा रहा था, पर काम है कि खत्म होने का नाम ही न लेता था।

लगभग एक साल हो चुका है। करीब साल भर पहले, एक लम्बी उम्र का छोटा सा सपना, उर्मिला और सुनील की बातों में सुगबुगाहट टटोल रहा था। अपने नौ साल की नौकरी से जमा की हुई पूँजी ने उन्हें विश्वास दिया, कि वह भी एक छोटे से आशियाने के मालिक बन सकते हैं। करीब डेढ़ साल पहले, जब सुनील की बदली मुंबई से लखनऊ हो गई तो इस सपने ने जैसे रफ़्तार ही पकड़ ली। एक ध्फ़एमसीजी कंपनी में मार्केटिंग की नौकरी थी, और वेतन भी अच्छा था।मुंबई के किराए के घर में इतनी बचत नहीं थी, कि वहाँ अपने खुद के घर का सपना देखा जा सके। ऊपर से उन कबूतर के दड़बे नुमा घरों की कीमतें कबूतरों की उड़ान की ही तरह ऊँची थीं। इसलिए जब उसे लखनऊ के रीजनल ऑफिस में तबादला मिला, तो उसने सर आँखों पर रख लिया। दूसरे बड़े शहरों की तरह लखनऊ में भी प्रॉपर्टी बाज़ार बुलंदियों पर था, पर सुनील जैसे अच्छे पद पर नौकरी पेशा वाले लोगों के लिए, अभी भी इसमें उन बुलंदियों पर उड़ान भरने की थोड़ी जगह बाकी थी। करीब दो महीने की गहन पड़ताल करने के बाद, तमाम छोटे बड़े बिल्डरों के दफ्तरों में ठंडा गरम पानी पीने के बाद, उर्मिला और सुनील ने आखिर एक घर पसंद किया। उस कम्पाउंड में नौ मंजिला इमारतों के बारह टावर थे; मुख्य शहर से थोड़ी दूर था, पर सुनील के दफ्तर के नज़दीक। बिल्डर का मार्किट में अच्छा ख़ासा नाम था, कई बिल्डिंगें पहले बना चुका था। ये प्रोजेक्ट भी कई बड़े–बड़े बैंकों से अनुमोदित था। सुनील के बजट से थोड़ा बाहर था, पर उर्मिला को ये प्रोजेक्ट भा गया। चूंकि सुनील के कई मानकों पर ये घर खरा उतरा, सुनील ने भी उहापोह में तय कर लिया कि वह अपने पैर कुछ दिनों के लिए चादर के बाहर पसार लेगा। अगले तीन दिनों में ही सुनील ने पांचवीं मंजिल पर एक फ़्लैट बुक करा लिया।23 सितम्बर, जिस दिन उसने बुकिंग का चेक बिल्डर को दिया, उसके जीवन के कुछ उन गिने चुने दिनों में से था जो मील के पत्थर की तरह उसके ह्रदय पर अंकित हो गया। पर ये उसके दिवास्वप्न का अंत था या उसके दुरास्वप्न का प्रारम्भ, ये जानने में उसे दस महीने लग गए। आइबीआइबीआइ बैंक से उसने होम लोन लिया। अन्य सार्वजनिक बैंकों की अपेक्षा प्राइवेट बैंकों की ब्याज दर थोड़ी ज्यादा थी, पर फिर भी सुनील ने एक प्राइवेट बैंक को चुना। नए युग की नयी एमबीए की योग्यता से परिपूर्ण सुनील को प्राइवेट बैंकों की दक्षता, उनके सिस्टम और उनकी सर्विस गुणवत्ता बहुत प्रभावित करती थी।

आइबीआइबीआइ बैंक में उसका पहले से ही अकाउंट था। इंटरनेट और मोबाइल युग की बैंकिंग व्यवस्था में अव्वल तो उसे बैंक जाने की जरूरत ही नहीं पड़ती थी; पर जब कभी वह बैंक जाता था, तो उसका गोरी–चिट्टी सनमाइका में पुता हुआ फर्नीचर, आपके नंबर आने की प्रतीक्षासूची फ्लैश करते हुए दीवार पर लटके हुए टीवी पैनल, और सुसज्जित ड्रेस में आपकी परिचर्या करने वाले क्लर्क उसे हमेशा आकर्षित करते थे। और फिर वहसुपरस्टार वाला विज्ञापन, जहाँ एक आदमी पूरी की पूरी बैंक लिए आपका खाता खोलने के लिए आपके घर पहुँचता है; और आपके घर की छत पर होली खेलते खेलते ही आपका खाता खोल देता है। "बैंकिंग तो पूरी भोकाल हो गई है।" अपने दोस्तों से एक ज़िक्र के दौरान सुनील ने कहा था।

लोन के लिए बैंक का प्रतिनिधि खुद सुनील के दफ्तर आया, और सब ज़रूरी कागज़ात ले गया। लोन जल्दी हो

गया पर जैसा सोचा था, ब्याजदर थोड़ी ज्यादा थी।प्रोजेक्ट अभी तैयार नहीं हुआ था। बिल्डर ने कहा था कि अगले साल जुलाई तक ही प्रोजेक्ट पूरा हो पायेगा, और तभी सुनील को कब्ज़ा दिया जा सकेगा।अगले नौ महीने तक सब कुछ ठीक चला। सुनील ने जब जैसे कहा, बैंक ने बिल्डर को पैसा दे दिया। चालीस लाख के लोन में से पैंतीस लाख बैंक ने बिल्डर को प्रस्तुत कर दिए थे, और शेष पांच लाख कब्ज़े के समय दिए जाने थे।

बाहर ड्राइंग रूम में पड़े सोफे पर बैठकर सुनील ने लैपटॉप ऑन किया।मेलबॉक्स खोलकर वह कुछ ढूँढने लगा। पिछले एक महीने में उसने दर्ज़नों मेल भेजे थे अपने बैंक को, पर कहीं से कोई हल नहीं निकला। एक आध मेल का जवाब आया भी तो सिर्फ इतना, "हम आपकी शिकायत पर काम कर रहे हैं, कृपया धैर्य रखें।" चमचमाती साड़ियों में लिपटी हुई बैंक की तमाम कर्मचारियों की तसवीरें, उसके ज़ेहन में तैरने लगीं। और वह प्रतिनिधि जो उसका लोन एप्लिकेशन भरने के लिए उसके दफ्तर आया था। कितना मधुर स्वभाव था उसका? कितने सौम्य, सभ्य और मंझे हुए दिखते हैं ये पेशेवर? और एक बार काम निकल जाने के बाद सब कुछ जैसे नेपथ्य में चला जाता है। "सर, आपकी शिकायत पर आपको अगले अड़तालीस घंटों में जवाब मिलेगा।" जैसे कि शिकायत का उद्देश्य ही जवाब हासिल करना हो, हल हासिल करना नहीं। फिर सुनील अपने फेसबुक पेज पर गया, जहाँ उसने बैंक के वेबपेज पर अपनी पूरी कहानी लिखी थी।पढ़ने लगा वह अपनी ही लिखी हुई कहानी।

"मैं सुनील कुशवाहा हूँ। आइबीआइबीआइ बैंक से मेरा होम लोन है, लोन अकाउंट नंबर और अन्य विवरण नीचे दिया गया है। पजेशन के ठीक पहले मेरे बिल्डर को आखिरी चेक पांच लाख का दिया जाना था, जिसके बाद रजिस्ट्री होनी थी। पर बैंक ने दो चेक बनाए, एक मेरे नाम पर और दूसरा बिल्डर के नाम पर। मेरे नाम पर 495000 का और बिल्डर के नाम पर 5000 का। बिल्डर ने कहा कि उन्हें पूरा पांच लाख का चेक उनके नाम पर ही चाहिए, तभी रजिस्ट्री होगी। मैंने वापस बैंक से निवेदन किया कि वह पूरा एक चेक बिल्डर के नाम से बना दें। बैंक के प्रतिनिधि ने उत्तर दिया कि संभव नहीं है। चूंकि मैंने फ़्लैट में कुछ अतिरिक्त काम दिखाकर अपने लोन की रकम बढ़वा कर ली है, इसलिए मेरे अतिरिक्त काम का चेक मेरे नाम पर ही दिया जाएगा, बिल्डर के नाम पर नहीं। मैंने ब्रांच जाकर अधिकारियों को निवेदन किया तो भी उन्होंने मेरा निवेदन स्वीकार करने से मना कर दिया। मैं देख रहा था, उस मैनेजर के कमरे में सफ़ेद बोर्ड पर उसके लोन का टारगेट।एक हज़ार करोड़ रुपये। अपना टारगेट पूरा करने के लिए इन लोगों ने मुझे राशि बढ़ाकर लोन दिया, और कागजों में दिखाया कि मैंने घर में अतिरिक्त काम कराया है। उस अतिरिक्त काम के कागज़ भी इन्होने खुद फर्जी कांट्रेक्टर से बनवा लिए थे। अपना टारगेट पूरा करके इन्होने अपने अच्छे प्रदर्शन के लिए तो लाभ ले लिया। पर जब लाभ मुझे पहुँचाने की बात आई, तो ये लोग मुझे बैंक के कायदे क़ानून समझाने लगे। मैंने भी जोश में आकर उन्हें सुना दिया कि अगर तीन दिन में मुझे आपने मेरे हिसाब से चेक बना कर नहीं दिया, तो मैं सीधे आपके सीएमडी को मेल लिखूंगा। मुझसे डरकर या शायद तरस खाकर, उन्होंने चौथे दिन मुझे आश्वासन दिया कि वे नया चेक मुझे अगले तीन दिन में दे देंगे। तीन दिन बाद उन्होंने मेरे पुराने चेक निरस्त किये और नया चेक दे दिया। इन दो चेक के बीच अंतराल का ब्याज उन्होंने मेरे सेविंग अकाउंट से काट लिया। ब्याज की राशि थी 2200 रुपये। राशि बड़ी नहीं थी पर सवाल था कि क्यों? जब मेरे पूरे लोन पर किश्तें शुरू हो चुकी हैं, तो फिर अब ये ब्याज क्यों। मैंने फिर प्रतिनिधि से शिकायत की, और कस्टमर केयर में भी फोन किया। जब कोई संतोषप्रद जवाब नहीं मिला तो फिर मैं ब्रांच पहुँचा, और उच्च अधिकारियों से बात की। पर वहाँ किसी को जैसे कुछ भी पता नहीं था। मैंने फिर सीएमडी को मेल करने की धमकी दी, तो उन्होंने फिर दो दिन का समय माँगा। दो दिन बाद उन 2200 रुपयों में से 425 रुपये वापस कर दिए। लेकिन अभी तक न तो मुझे इस राशि का कोई स्टेटमेंट दिया और न ही कोई मौखिक विवरण दिया। बस ये कहा कि चेक जमा करने में देरी होने की वजह से ब्याज काटा गया है। खैर, मैंने निर्णय किया कि मैं इस मसले से बाद में निबटूँगा, पहले घर की रजिस्ट्री करा लूं। मैंने नया चेक जब बिल्डर को दिया तो उसने रजिस्ट्री करा दी। रजिस्ट्री कराने के अगले ही दिन मेरे प्रतिनिधि ने मुझे फोन करके बताया, कि नया चेक बैंक ने निरस्त कर दिया है। चेक ज़ारी करने की तारीख से 7 दिन के अन्दर रजिस्ट्री होनी चाहिए थी। चूंकि रजिस्ट्री आठवें दिन हुई, बैंक ने चेक निरस्त कर दिया। पढ़ा लिखा होने के बावजूद मुझे अब तक समझ नहीं आया कि रजिस्ट्री होने के बाद चेक निरस्त होने से क्या दुविधाएँ झेलनी पड़ेंगी। जब चेक पर साफ़–साफ़ लिखा था "एक माह के लिए मान्य" तो बैंक ने इतनी जल्दी क्यों की? मैं समझ चुका था कि ये बैंक अधिकारियों को दी गई धमकियों का ही असर है। ये अधिकारी शायद ठानकर बैठे थे, कि मुझे सबक सिखाकर ही दम लेंगे.....।"

"....कितनी अजीब विडम्बना है? बिल्डर और बैंक का सारा कारोबार मेरे जैसे ग्राहकों के दम पर होता है, पर न बिल्डर को ग्राहक पर भरोसा है और न बैंक को। बिल्डर को बैंक पर भरोसा है और बैंक को बिल्डर पर। कितने ही बड़े–बड़े

कॉर्पोरेट बैंकों को चूना लगाकर ऐश की ज़िन्दगी बसर कर रहे हैं, और कानून उनका कुछ नहीं उखाड़ पा रहा है। कितने बैंक अधिकारियों ने रिश्वत लेकर कॉर्पोरेट जगत की बड़ी मछलियों को अवैध लोन पास किये, और फिर भी दोनों चैन की बंसी बजाते रहे। और एक मध्य वर्गीय ग्राहक़ को गिरवी लोन के लिए भी एक पूरी जेहाद लड़नी पड़ रही है। ये है नए दौर की चकाचौंध बैंकिंग, "द भोकाल बैंकिंग"। नयी अर्थ व्यवस्था की नग्न तस्वीर, जिसका एक हिस्सा मैं भी था। इस संकट से उबरने का उपाय मैंने बैंक से पूछा तो वह बोले, "एक करेक्शन डीड करानी होगी।" अर्थात मुझे रजिस्ट्री दफ्तर दोबारा जाना पड़ेगा, और बिल्डर को भी आना पड़ेगा। मेरी तो मजबूरी है, इसलिए मैं तो चला जाऊँगा पर बिल्डर क्यों जाएगा। चेक बैंक ने निरस्त किया है, गलती बैंक की है फिर बिल्डर क्यों सरदर्द लेगा? मैं निराश होने लगा था। बरसात के मौसम में एक रजिस्ट्री ही बहुत भारी पड़ी थी। एक तो दफ्तर से छुट्टी लेने की जुगत, और दूसरे उस बरसात में भीगते हुए आने जाने की कवायद। दूसरी बार रजिस्ट्री दफ्तर जाने के ख्याल ने ही मुझे हिला दिया। कोफ़्त होने लगी थी मुझे अपने सपनों के घर से। किराए पर ही रह लेते तो क्या हो जाता? बिल्डर कहता है कि मुझे अपने वकील से बात करनी पड़ेगी। एक महीने से वह अपने वकील से बात कर रहा है। इस घर का किराया और उस घर की किश्त मुझे बहुत भारी पड़ रही है। बैंक के वेबसाईट पर कई बार शिकायत डाली, पर अधिकारी बस जल्द सुलझाने के वादा करके सो जाते हैं। बैंकिंग लोकपाल से शिकायत की बात भी सोची, पर उनकी भी अपनी शर्तें हैं। जब तक बैंक में शिकायत एक महीने पुरानी न हो जाए, और उस पर कोई संतोषजनक कार्यवाही न हो, तभी आप लोकपाल को शिकायत भेज सकते हो। फिर भले ही चाहे एक महीने में आपकी दुनिया उजड़ती हो तो लोकपाल की बला से। दो ही उपाय शेष रह गए हैं, उपभोक्ता अदालत में शिकायत या फिर पुलिस में एफ़आईआर।"

अपनी ही लिखी हुई कहानी पढ़ते पढ़ते सुनील का मन भर गया। "लोन लेकर आप प्रोपर्टी खरीद सकते हो, घर नहीं।" उसने सोचा। कैसी दुनिया है ये? बैंक के ब्याज का एक–एक दिन का हिसाब और ग्राहक़ का.....? न कोई नफा न नुकसान। क्या कहानी सुनाई थी उस बैंक अधिकारी ने? बैंक किसी का एक रुपया भी नहीं लेता। एक रुपये का चेक ग्राहक़ को देने के लिए, बैंक ने सैकड़ों रुपये के फोन कॉल कर डाले। मैं समझ नहीं पाया कि उस कहानी के ज़रिये अधिकारी अपने दायित्व का बखान कर रहा था, या फिर अपनी मूर्खता पर टिप्पणी। इनकी ट्रेनिंग में सुनाई जाती होंगी ये कहानियाँ इनको। कि ग्राहक़ को मीठी–मीठी विश्वास भरी बातें करके जिंदा रखो। मरने मत दो उसे, क्योंकि अगर मर गया तो बैंक का व्यवसाय ठप। एक बार फिर उसने बैंक की वेबसाईट पर अपनी शिकायत भेजने की कोशिश की। पर भेज नहीं सका। शिकायत पत्र का वेब पेज बार–बार उसे किसी न किसी बहाने से कह देता, कि आप अब शिकायत भेज ही नहीं सकते। कभी नाम मैच नहीं करता, कभी अकाउंट नंबर तो कभी कुछ और।

आखिरकार अपना लैपटॉप बंद करके वापस बेडरूम में आ गया सुनील। नींद गायब थी उसकी आँखों से, पर सोना तो पड़ेगा ही। सुबह ऑफ़िस जो जाना है। बिस्तर के बीचो–बीच विनय पसरा हुआ था, गहरी नींद में। उर्मिला बिस्तर के एक तरफ लेटी हुई थी, शायद सो चुकी थी। सुनील ने विनय को मस्ती भरी नींद में देखा और मुस्कुराये बिने नहीं रह सका।

गिरने लगा हूँ खुद मैं अपनी ही नज़र से
अपने बच्चे की नींद से जलने लगा हूँ
उसको पूरी से भी ज्यादा
और मुझे कुछ भी नहीं

अगले दिन शाम को देरी से घर लौटा सुनील। और फिर उसके देर से घर लौटने का सिलसिला नियमित हो गया। सुनील की शर्ट के बटनों के खुलने की बंदिश अब गायब हो गई थी। उर्मिला की रोटियाँ अब अकेले ही फुदकती थीं लौ पर। तीन चार दिन बाद एक शाम आखिर उर्मिला ने पूछ ही लिया।

"क्या बात है? दफ्तर में कुछ काम बढ़ गया है क्या?"

"हाँ....कुछ ऐसा ही समझ लो." बहुत देर में आया उसका औपचारिक उत्तर। शायद वह उत्तर देना ही नहीं चाहता था। उसकी चुप्पी को कई दिन हो गए थे।

"सुनो...बैग से निकालकर मेरा लैपटॉप ऑन कर दो...और मेज़ पर रख दो। मैं अभी दो मिनट में नहा कर आया।" कपड़े उतारकर बाथरूम में चला गया। सुनील के कहे अनुसार उर्मिला ने लैपटॉप ऑन करके मेज़ पर रख दिया और वापस अपनी रसोई में व्यस्त हो गयी।विनय वहीं मेज़ पर बैठा होमवर्क कर रहा था।पानी का भरा हुआ गिलास जो उर्मिला ने विनय के माँगने पर उसे पीने के लिए दिया था, विनय का हाथ लगने से गिर पड़ा। गिलास का पूरा पानी लैपटॉप पर ही गिरा और उसका कीबोर्ड जलमग्न हो गया।

"मम्मी!" विनय की बहुत बारीक आवाज निकली।

उर्मिला ने देखा तो चिमटे में फँसी रोटी छोड़कर तुरंत गैस बंद कर दी।

"कितनी देर से रखा है पानी? अभी तक पिया क्यों नहीं?" उसने चीखते हुए पूछा।

विनय का भयभीत चेहरा मानो सिकुड़ सा गया।उर्मिला का तीक्ष्ण स्वर सुनकर सुनील तौलिया लपेटे हुए बाथरूम से बाहर निकला।नज़ारा देखकर वह तिलमिला उठा और बिना कुछ सोचे विनय को एक ज़ोरदार थप्पड़ रसीद कर दिया।पहले से सहमा हुआ विनय थप्पड़ की चोट खाकर रो दिया।उर्मिला ने उसे एक ओर खींचकर आँचल में छिपा लिया।रसोई से एक कपड़ा लेकर सुनील कीबोर्ड पर पड़ा पानी साफ़ करने लगा पर पानी साफ़ करने के बाद भी लैपटॉप ऑन नहीं हुआ।वह फिर से विनय की ओर मुड़ा और जोर से चीखा।

"ज़िन्दगी नर्क बना के रख दी है हरामखोर ने।कहीं मर–खप क्यों नहीं जा तू? क्यों मेरी जान के पीछे हाथ धोकर पड़ा है?"

झंझावत में उसके मस्तिष्क के तारों में जैसे शोर्ट सर्किट हो गया हो। माँ के आँचल से सुनील ने विनय को घसीटा और उसके मुँह, कमर, पीठ, शरीर का जो भी हिस्सा उसके मज़बूत हाथों के सामने पड़ा उस पर भरपूर प्रहार करता रहा।विनय को जैसे सुध ही न रही कि उसके साथ क्या हो रहा था।वह अबोध चीखता रहा और सुनील वार करता रहा।

इससे पहले कि उर्मिला कुछ समझ पाती, कुछ कर पाती, विनय के होठों से खून बहने लगा था।घर के बाहर से गुजरते हुए लोग बच्चे की चीखें आसानी से सुन सकते थे।

"क्या कर रहे हो सुनील? पागल हो गए हो क्या?" उसे प्रतिरोध का बस इतना ही अवसर मिला।

"बच्चा है...हो गई गलती...अब क्या उसकी जान ही ले लोगे?"

अपनी करनी का एहसास होने में सुनील को एक पल भी न लगा।आँखें मूँद कर खुद पर ही खीझने लगा वह।तुरंत अपने कमरे में गया और बिस्तर पर गिर पड़ा।

उर्मिला ने विनय को पुचकारा।उसे बाहों में भर लिया।माँ के कंधे पर सिर रख कर वह निरीह देर तक कुनमुनाता रहा।उर्मिला सह न सकी।सुनील का ऐसा रौद्र रूप उसने पहले कभी न देखा था।उसका मन विचलित हो उठा। खुद को रोक न सकी, और सुनील के कमरे में जाते ही उसका बैग खोलकर देखने लगी। शादी के बाद आठ सालों में पहली बार उसने ऐसा किया था। अपने पति से कुछ छुपाने की उम्मीद नहीं थी उसे, पर उसकी बेचैनी का जवाब उसे चाहिए था। कुछ तो था जो उसकी सामान्य मनोस्थिति से अलग था।डॉ. शुक्ल के क्लीनिक के पर्चे थे, और कुछ दवाइयां।डॉ. शुक्ल, मनोरोग विशेषज्ञ। सुनील मानसिक वेदना से गुजर रहा था। पिछले तीन दिनों से वह रोज़ डॉ. शुक्ल के क्लीनिक जा रहा था। क्या लिखा था उस पर्चे पर, कुछ समझ नहीं आया। क्या करे? सुनील से बात करे या न करे? कैसे वह अकेले उसके हाल पर छोड़ दे उसे? उसे बात करनी ही होगी। शायद सुनील को बुरा लगे। तो क्या? और कोई है भी तो नहीं? क्या उसे सुनील के दफ्तर में किसी की मदद लेनी चाहिए? शायद महेश चौधरी की, जो उनका अच्छा मित्र है। पर फिर भी सुनील से तो उसे बात करनी ही होगी।

"तो जासूसी शुरू कर दी तुमने भी?" सुनील का सीधा आक्षेप था उर्मिला पर।

"मुझे लोन देने से पहले बैंक वाले ने भी मेरे बारे में सब कुछ पता किया था। कहाँ रहता हूँ, कितने बच्चे हैं, नौकरी स्थायी है या नहीं...? माँ–बाप क्या करते हैं...? अगर मैं मर गया तो लोन कौन चुकाएगा...?वगेरह वगेरह...। और हम ग्राहक़ लोग सिर्फ टीवी पर एक विज्ञापन देखकर बैंक पर भरोसा कर लेते हैं। हम हैं आपके शुभचिंतक। हम बैंक के बारे में कभी नहीं सोचते....कि लोन दे पायेगा कि नहीं, सर्विस ठीक से करेगा, परेशान तो नहीं करेगा....साज़िश करता है बैंक। खैर...तुम जासूसी मत करो।"

"मुझे भी चलना है तुम्हारे साथ डॉक्टर के पास।"

"ताकि तुम मेरी हालत का वास्ता देकर उस बैंक वाले से भीख मांग सको।"

"एक मिनट....कहीं तुम सब लोग मिले हुए तो नहीं हो? बैंक, बिल्डर और अब तुम भी? क्या बताती हो तुम बिल्डर को मेरे बारे में।"

"क्या बकवास कर रहे हो सुनील? मैं बिल्डर से मिली हुई हूँ, बैंक से मिली हुई हूँ?"

"क्यों? नहीं हो सकता क्या?"

कुछ अलग व्यवहार था सुनील का, साफ़ साफ़ दिखाई दे रहा था। ऐसी बातें कभी कभी वह मज़ाक में करता था, पर आज ये मज़ाक नहीं था। पर लड़ने से कुछ फायदा नहीं।उर्मिला खाना लगाने में जुट गई। सुनील भी विनय के साथ टीवी देखने लगा।

अक्सर सुबह आठ बजे उठने वाला सुनील, उस दिन पांच बजे ही उठ गया। उसने विनय और उर्मिला को सोते हुए देखा। और उठकर, फ्रिज से पानी निकालकर पीने चला गया। वापस आकर बिस्तर पर बैठ गया, और काफी देर तक यूँ ही बैठा–बैठा दरवाजे को निहारता रहा। अचानक उर्मिला की नींद खुली तो उसे यूँ देखकर वह भी उठकर बैठ गई।

"क्या हुआ?"

"कुछ नहीं।"

उसने सुनील का सर झुकाकर अपनी गोद में रख लिया।

"मैंने यूँ ही तुम से झगड़ा किया कल रात। सॉरी..."

"कोई बात नहीं।"

शाम को डॉ शुक्ल के क्लीनिक में जाकर उर्मिला को

संतोष हो गया कि सुनील की परेशानी गंभीर नहीं है, बस थोड़ा डिस्टर्ब है।ये तो अच्छा है कि सुनील खुद चलकर डॉक्टर के पास गया, वरना कितने लोग हिम्मत कर पाते हैं खुद को मानसिक रोगी समझने की। अगले दिन जब सुनील दफ्तर में था तो डॉ शुक्ल ने उर्मिला को फोन किया।

"क्या बात है डॉक्टर?"

"हम डॉक्टरों को कभी–कभी मरीज़ से कुछ छुपाना पड़ता है। पिछले चार दिनों से मैं सुनील से बात कर रहा हूँ।वह दवाइयाँ भी मैंने ही दी हैं उसे। किसी भी निष्कर्ष पर पहुँचने के लिए ये बहुत जल्दबाजी होगी, लेकिन फिर भी मुझे आपसे कुछ बातें करनी हैं सुनील के बारे में।ये बातें मैं सुनील की उपस्थिति में नहीं कर सकता था।"

"जी। पूछिये।"

"सुनील के व्यवहार में कुछ तीक्ष्ण बदलाव नोटिस किये हैं आपने? ...पिछले कुछ दिनों में? जैसे उसकी दिनचर्या में कुछ विशेष परिवर्तन, उसके सोने के समय या जागने का समय में कोई परिवर्तन?"

"बहुत ज्यादा नहीं, लेकिन हाँ कभी–कभी लगता है....उन्हें ढंग से नींद नहीं आती। पिछले कुछ दिनों से वह नींद की गोलियाँ भी लेने लगे हैं।"

"क्या कभी आपको ऐसा लगा जैसे उसका रवैया निराशा से भर गया हो? किसी बात को लेकर परेशान है वह?"

"हाँ। एक बैंक लोन अटक गया है। उसी वजह से थोड़ा परेशान हैं। और कोई बात नहीं है।बहुत निराशाजनक बातें करने लगे हैं। ऐसा लगता है, जैसे सारी दुनिया उनके खिलाफ हो गई हो; और उन्हें अकेले छोड़ दिया हो। ऐसे जैसे पूरा सिस्टम भ्रष्ट है, दीमक लगी हुई है। सब कुछ खोखला है। पहले बहुत आनंद से क्रिकेट देखते थे, पर अब बोलते हैं सब 'फिक्स' है। कहते हैं कि अब सिर्फ बेवकूफ लोग क्रिकेट देखते हैं। समाचार देखते हैं टीवी पर, तो कहते हैं सब नेता मिले हुए हैं, बस टीवी पर दिखाने के लिए लड़ते रहते हैं। कोई स्कोप नहीं है....इंडिया का कोई भविष्य नहीं है। कभी कहते हैं कि बिल्डर और बैंक वाले उनके पीछे लगे हुए हैं, और उनका घर हड़पने की साज़िश रच रहे हैं।"

डॉक्टर ध्यान से सुन रहा था।

"आपके पति के घर में कभी किसी को ऐसी डिप्रेशन की शिकायत हुई है?"

"नहीं, कम से कम मेरे सामने तो नहीं। पर मैं कोशिश करके आपको बता सकती हूँ।"

"ठीक है। आप सावधानी से कोशिश करिए। देखिये, मुझे ऐसा लगता है कि सुनील थोड़ा डिप्रेशन में है। ये कई वजहों से हो सकता है। एक तो ये जेनेटिक यानि वंशानुगत हो सकता है, या फिर कुछ अन्य बाहरी कारणों से भी हो सकता है, जैसे कि बैंक लोन का टेंशन। पारिवारिक इतिहास जानना ज़रूरी है। क्योंकि अगर ये जेनेटिक है और उसपर बाहरी कारणों से भी टेंशन है, तो ये खतरनाक हो सकता है। यदि ये जेनेटिक नहीं है, तो शायद चिंता की कोई बात नहीं है। अन्य रोगों की तरह डिप्रेशन का रोग भी परिवार की सांत्वना, साहस और धीरज की परीक्षा लेता है। आपको धैर्य से काम लेना होगा और ध्यान रहे कि उसकी बीमारी का कोई वीभत्स रूप, आप उसके सामने न रखें।"

उसी हफ्ते शुक्रवार को महेश अपने बिजनेस टूर से वापस लौटा। आम दिनचर्या की तरह दफ्तर में लंच के दौरान महेश सिगरेट पीने के लिए बाहर निकला तो सुनील भी उसके साथ था।

"एक बड़ी गोल्ड फ्लेक।" महेश ने टपरी वाले से कहा।

"एक मुझे भी देना, बड़ी गोल्ड फ्लेक।" सुनील बोला।

"पर तूने तो छोड़ दी थी सिगरेट?" महेश ने पूछा।

"हाँ,मैंने तो छोड़ दी थी;पर ये भी तो मुझे छोड़े।" सुनील ने निराशाभरा उत्तर दिया।

"क्या बात है? भाभी बता रही थी तेरे लोन का प्रोब्लम अभी तक हल नहीं हुआ।"

"एक दिन अखबार में हेडलाइन्स में छपवा देगी उर्मिला।"

"बात क्या है? सहकर्मी हूँ तेरा...और दोस्त भी। अगर मुझे नहीं बताएगी तो किसे बताएगी? इतना हाइपर होने की क्या ज़रुरत है?"

"कुछ नहीं हुआ अभी तक। करेक्शन डीड के लिए बोल रहा है बैंक।"

"तो करा ले करेक्शन डीड और छुट्टी कर। आगे बढ़ यार, कब तक यहीं अटका रहेगा। घर तेरा तैयार हो गया है, मैंने सुना कि लोग शिफ्ट भी हो गए हैं। तू भी कर ले शिफ्ट। जो हो गया सो हो गया। आजकल ये सब दिक्कतें हो जाती हैं। बैंक के भी कुछ तरीके होते हैं।वह लोग अपने तरीके से ही चलेंगे।"

"बैंक के तरीके तरीके होते हैं, बाकी आम आदमी का कुछ नहीं होता।वह तो चूतिया है न...जब चाहो जिधर बुला लो। हस्ताक्षर करता हो तो हस्ताक्षर करवा लो, नहीं तो अंगूठा ठुकवा लो....चोरी की है बैंक ने। मेरी बिना इजाज़त के मेरे अकाउंट से 2200 रुपये निकाल लिए। चोरी है ये। प्रोसेसिंग फीस की रसीद अभी तक मुझे नहीं दी। गुंडई है ये....तुमको लेना है तो लो, नहीं तो रास्ता नापो, हम तो ऐसे ही देंगे.... आपके घर में चोरी हो जाए तो आप पुलिस को बुलाते हो, एफ़ आई आर लिखवाते हो, कार्यवाही करते हो। भले ही उस कार्यवाही से कुछ हासिल न हो। लेकिन यहाँ, एक बैंक ने चोरी की मेरे अकाउंट से, और मैं रिपोर्ट तक नहीं लिखा

सकता। क्योंकि कानून कहता है कि बैंक चोर नहीं हो सकता। क्या फर्क है इस नई बैंकिंग और गाँठ गिरवी के सोनारों के पुराने धंधों में? अपनी शर्तों पे लोन देते हो। क्यों नहीं मैं अपने टर्म्स और कंडीशंस लेके पहुँच जाता किसी बैंक के पास, कि आपको मेरी शर्तों पे मुझे लोन देना होगा। बैंक दस से दस हज़ार हो गए फिर भी, आज बैंकिंग मार्किट सेलर्स मार्किट क्यों है? कोई एहसान नहीं करता बैंक हमें लोन देके। ये धंधा है उसका और इसी धंधे से रोज़ी रोटी चलती है, उन कर्मचारियों की, मालिकों की या उसके शेयर होल्डरों की। बैंक बेईमानी करते हैं, गलत लोन देते हैं तो सिर्फ मालिक और शेयर होल्डर सफ़र नहीं करते, सारा देश सफ़र करता है; लोगों की नौकरियां छिन जाती हैं। तो किस आधार पर बैंक अपनी मनमानी कर सकता है। लेना है तो लो नहीं तो आगे बढ़ो। व्यवस्था में दायित्व नाम की कोई चीज़ होती है या नहीं।"

सुनील लगभग रोने लगा था। आंसू नहीं निकले, बस। महेश ने किसी तरह उसे आश्वासन दिया कि सब ठीक हो जाएगा।

उर्मिला की परेशानी बढ़ गई, जब उसे पता चला कि एक बार सुनील के पिताजी को भी डिप्रेशन का दौरा आया था, उनकी शादी के कुछ दिनों बाद ।उसके पापा पढ़ाई करना चाहते थे, और गरीब माँ बाप ने अभाव में उनकी शादी करा दी। बुरी खबर थी। उसने निर्णय लिया कि वह फिर सुनील से बात करेगी, पर अकेले नहीं। उसने महेश को भी अपने घर बुला लिया।

"क्या करना चाहते हो? मन में क्या है तुम्हारे?" महेश ने पूछा।

"मैं बैंक को सबक सिखाना चाहता हूँ। मैं हर उस चीज़ की कीमत वसूलना चाहता हूँ, जो पिछले कुछ दिनों में मैंने खोई है। मेरी चार छुट्टियों की कीमत, मेरा एक महीने का इस घर का किराया, मेरे इलाज का पूरा खर्चा।"

"कुल मिला कर एक लाख रुपया....यानि हम अगर बैंक पर उत्पीड़न का केस करें तो मुआवज़े से संतुष्टि होनी चाहिए। मैं पुलिस केस की बात कर रहा हूँ, घ्फ़ आई आर बैंक के खिलाफ।"

"दूसरा तरीका ये है कि हम बिल्डर को उसका पैसा दे देते हैं,पाँच लाख रुपया। और कब्ज़ा ले लेते हैं। उसके बाद बैंक आपके पीछे आएगा, रजिस्ट्री के कागज़ लेने के लिए। फिर हम बैंक को सबक सिखा सकते हैं। हम उसे कागज़ नहीं देंगे, तो वह कानूनी रास्ता अपनाएंगे और तब हम अपना पूरा किस्सा कोर्ट के सामने रख सकते हैं। उसमें वह सब लोग फँसेंगे जिन्होंने आपके फ़्लैट की कीमत दिखाकर लोन की राशि बढ़ाई। समय लगेगा पर तुझे सौ प्रतिशत सुकून मिलेगा।"

"बोल क्या करना है?"

"दूसरा तरीका ठीक है।"

"ठीक है फिर। तू आराम कर। मैं पैसे का जुगाड़ करता हूँ। आज शाम को ही हम बिल्डर से कब्ज़ा ले लेंगे। और कल से तेरी शिफ्टिंग शुरू।"

अपने सभी दोस्तों से सहयोग करके महेश ने पाँच लाख रुपये शाम तक सुनील के अकाउंट में जमा कराये। और उसी शाम को बिल्डर को चेक दे दिया। बिल्डर ने फ़्लैट का कब्ज़ा सुनील के हवाले कर दिया। अगले दिन से सुनील ने शिफ्टिंग शुरू कर दी। सब ठीक हो गया। अब सुनील बैंक वालों के पीछे नहीं बल्कि बैंक वाले सुनील के पीछे पड़े थे, रजिस्ट्री के कागज़ लेने के लिए। सुनील को बस अब धीरे धीरे सभी दोस्तों का पैसा लौटना था। दोस्तों ने कहा कि आराम से दे दे। सुनील का तनाव कम होने लगा था। फिर एक दिन...

पहली बार उसके नए घर में पोस्टमैन आया। शाम को सुनील ने ऑफिस से आकर देखा। सुनील को संदेह था कि बैंक की ओर से अदालती कार्यवाही का नोटिस होगा। लेकिन ये कुछ और ही था।

"आपके अकाउंट में तीन लाख रुपये कैश जमा किया गए 27 अगस्त को। इनकम टैक्स विभाग जानना चाहता है कि इस रकम का स्रोत क्या है। ये रुपये किसने और किस लिए ट्रांसफर किये?"

सुनील को याद आया कि महेश ने बताया था। दो लाख रुपये इन्टरनेट ट्रांसफर और बाकी पैसा कैश में दिया थे दोस्तों ने। ज़रूर बैंक वालों ने इस लेन देन का ब्यौरा दिया होगा। एक नयी मुसीबत सुनील का इंतज़ार कर रही थी।

"इस दुनिया में घर का सपना देखना गुनाह नहीं बल्कि ऐसा गुनाह है जिसकी कोई माफ़ी नहीं।"

वह सोच ही रहा था कि उसका फोन बजा।

"सर आपने आइबीआइबीआइ बैंक से हाल ही में होम लोन लेकर घर खरीदा। ये कॉल आपसे फीडबैक लेने के लिए है। लोन लेने की पूरी प्रक्रिया के दौरान आपका अनुभव कैसा रहा। आपका फीडबैक हमारे लिए महत्वपूर्ण है।"

"आप एक मुर्दे से बात कर रहे हैं। और मुर्दे फीडबैक नहीं दिया करते।"

"जी।"

टूटूटूटूटूटूटूटूटूटूटूटूटू।

सुनील ने फोन काट दिया।

समझ

मीना गोदरे अवनी
इंदौर
मो.–9479386446

वाश एरिया में कपड़े धोने की मशीन के पीछे उस दिन नजर पड़ी तो वहां रखी बास्केट में दो अंडे पड़े देख मैं चौक गई। खिड़की के बाहर बिजली के तारों पर बैठी कबूतरी एकटक मुझे देख रही थी। मुझे समझते देर न लगी कि कुछ दिनों से यह रोज–रोज क्यों वाश एरिया में घुस रही है। उसका डर और पीड़ा समझते ही मन कराह उठा। उसे आश्वस्त करने के इरादे से मैं जल्दी ही वहां से हटकर अंदर कमरे में आ गई।

पति शशांक को बताया तो उन्होंने वह कबूतरी के अंडे की टोकरी हाथ में उठा ली बोले –'इन्हें में बाहर रख देता हूं तो वो कबूतर भी नहीं आ पाएगा।'

मैं लगभग चीख पड़ी–'अरे! उस टोकरी को जल्दी से वहीं रख दो जहां उठाये हो। और हां, अब कुछ दिन खिड़की में जाली नहीं लगाना। न तो आप वहां जाना।'

'कल तक तो तुम इतनी परेशान थी उस कबूतर से....रोज खिड़की पर जाली लगाने की रट लगाए हुए थीं, और जाली ले आया हूं तो लगाने नहीं दे रही हो?'

'हां, कल तक मुझे नहीं मालूम थी उसकी स्थिति!'

'तुम्हें पता है अंडे में से चूजे निकलेंगे। वह जब तक उड़ने लायक नहीं हो जाएंगे यहीं रहेंगे और वह कबूतर भी आता रहेगा।'

'वह कबूतर नहीं कबूतरी है, आने दो उसे...मैं समझ सकती हूं उसकी पीड़ा...इंसानों के बीच अपने बच्चों की सुरक्षा, उसका डर और उसके अव्यक्त ममत्व को।'

'क्या तुम नहीं जानती ? अंडे से बच्चे बाहर आने और उनके उड़ने में 20 –25 दिन तो लग ही जाएंगे, तब तक वह दोनों कबूतर यहां आते ही रहेंगे।'

'लगने दो.....जब तक उसके बच्चे अंडे से बाहर न हो जाएं और अपने पैरों पर खड़े न हो जाएं तुम्हें मेरी कसम, तुम उन्हें डिस्टर्ब नहीं करोगे।'

'सच में तुम औरतों को समझना हमारे वश की बात नहीं है।'

'यही तो फर्क है तुम में और मुझ में...' कहते हुए मैंने चावल के कुछ दाने और पानी का सकोरा बास्केट के पास सरका दिया। अब वह भी मुस्कुराने लगे।

ईमानदार नागरिक

महेश राजा,
वसंत–51, कालेज रोड
महासमुंद, छत्तीसगढ़
मो.–9425201544

प्रायः मुझे हर दूसरे दिन बस से शहर जाना होता था।

बहुत पहले की बात है, तब किराया होता था, तीन रूपये चालीस पैसे। परिवहन निगम की टिकट खिड़की पर जो आदमी बैठता था, वह मुझे साठ पैसे कभी नहीं लौटाता था। वह हर बार कहता–'चिल्हर नहीं है।' या फिर झल्लाता –'चिल्हर लेकर आओ।'

मेरी तरह दूसरे यात्रियों से भी वह इसी तरह से व्यवहार करता। इस तरह शाम तक वह पंद्रह बीस रूपये बना लेता। उन दिनों इतने पैसे का भी बड़ा महत्व था। तब वेतन 260 रुपये प्रति माह हुआ करता था।

मैं जानता था कि उसका यह कार्य अनुचित है, लेकिन मैंने कभी चिल्हर पैसे नहीं मांगे। मैं अक्सर दस रूपये का नोट देता और वह मुझे छह रूपये लौटाता।

यह क्रम बना रहा। आज मैंने संयोग से उसे पांच रूपये का नोट दिया। उसने मुझे टिकट दिया और छह रूपये वापस किये। मैं विन्डो पर ही खड़ा रहा। उसने मेरी तरफ देखा और आदतन झल्ला कर कहा–'छुट्टे पैसे नहीं हैं। आपको पैसों का इतना ही मोह है तो खुल्ले पैसे लाया करें...। चलिए भीड़ मत बढ़ाइये। आगे बढिये।'

मैंने कहा–'बाबू साहब! सुन तो लीजिये, मैंने पांच रूपये का नोट दिया था ....आपने मुझे ज्यादा पैसे लौटा दिये हैं।'

वह बोला–'ज्यादा लौटा दिये है तो देश के ईमानदार नागरिक की तरह वापस कर दीजिये...दूसरों के पैसों पर नियत खराब करना अच्छी बात नहीं है।'

मैंने पांच रूपये वापस कर दिये। उसने उसे मेज की दराज में डाला और दूसरे यात्री का टिकट काटने लगा।

उसके सपनों का गुम्बद

सैली बलजीत
1288, लेन–4, राम शरणम कॉलोनी,
डलहौज़ी रोड,
पठानकोट 145001.
मो : 6280683663

उसके दिल के धरातल पर चढ़ती उम्र के सपने उगने लगे थे।

इस उम्र में दूसरे लड़कों की तरह उस पर भी खुमार चढ़ा था। उसने पढ़ाई ख़त्म कर ली थी। पढ़ाई की कोई सीमा थोड़े होती है लेकिन उसने फिलहाल इन्जीनियरिंग में डिप्लोमा किया था...वह इन्जीनियर हो गया था। कुछ दिनों तक वह भी सपनों के गुम्बद पर चढ़े रहा था। उसके दिल पर भी सपनों के गुलमोहर महके थे। वह भी सपनों के पीछे भागने वाले लोगों की कतार में खड़ा हुआ था। लेकिन....नौकरी ऐसे तो नहीं मिल जाती इस देश में..वह भी ऐड़ियां रगड़ते हुए पस्त हो गया था....उसके हाथ खाली रहे थे। बहुत कोशिशों के बावजूद भी उसकी चरमराती ज़िन्दगी महक नहीं सकी थी। उसने सोचा था, ज़िन्दगी की शुरुआत ही ग़लत हो गई है, उसे हर रास्ता आगे से बंद हुआ प्रतीत हुआ था।

उस दिन उसने प्रथम बार बुझे मन से पापा के तीखे नश्तरों का सामना किया था।

"कब तक घर में बैठा रहेगा बरखुरदार...कहीं भी कोई तो काम कर सकता है तू...?"

"पर...मेरी लाइन की कोई नौकरी तो हो..." वह बुदबुदाया था।

"ऐसे तो मिलने से रही नौकरी...तुम्हें कोई सीधे तो अफ़सर बना नहीं देगा..."

"मैंने कब इनकार किया है...बोलिए...कहाँ–कहाँ नहीं ऐड़ियां घिसाईं...क्या मिला...? अब तो कहीं पोस्ट निकलती ही नहीं..."

"हमारे ज़माने में कोई ना कोई काम मिल ही जाता था...मुझे देख मैंने वर्क चार्ज से शुरू की थी नौकरी...कहाँ तक पहुँचा हूँ...शर्म की होती तो मैं भी कहीं धक्के खा रहा होता..."

"आप हर बार अपनी बात क्यों ले बैठते हैं...कब तक उस ज़माने को हर बात में घसीटते रहेंगे...?"

"तभी तो कहता हूँ....कहीं छोटी–मोटी नौकरी ही कर ले...ज़िन्दगी में कितनी ही राहें अपने आप खुल जाती हैं..."

"पर...एक बात कहे देता हूँ....नौकरी मेरी लाइन की हो...मैंने कब इनकार किया है....?"

उस दिन वह लम्बे समय तक बहस का मुद्दा बना रहा था।

उसने अपने सपनों का अभी ज़िक्र नहीं किया था। क्या रखा है इस देश में...नौकरियां यहां से जाने कहां उड़न छू हो गई हैं ? इससे तो बेहतर है....विदेश में जाकर किस्मत आजमाई जाए...उसके कितने सहपाठी विदेशों में जाकर बढ़िया कारोबार कर रहे हैं...विदेश में कोई मूल्य तो है आदमी की मेहनत का...यहाँ क्या मिलता है....दिन रात कोल्हू के बैल की तरह खपते रहो...क्या मिलता है...कुछ नहीं....इस देश में तभी तो कुछ नहीं...कितने पढ़े–लिखे लड़के हाथों में डिग्रियाँ थामे हुए बेकार घूम रहे हैं....उनके सपनों के महल धराशायी हो रहे हैं....

उसने भी पिछले दिनों, ऐसा ही सपना उगाया है....

यह सपना तो उसके दिल की धरातल पर जाने कब से अंकुरित हो चुका है।

पिछली बार जब मिन्दी चाचा को दिल्ली एयरपोर्ट तक छोड़ने गया था तो उसका सपना विशाल आकार ग्रहण करता हुआ प्रतीत हुआ था...उसे लगा था, एक दिन वह भी इसी "एयरपोर्ट" पर जब विदेश जाने के लिए आएगा तो उसकी झोली भी सपनों से भर उठेगी। उसके घर में अनेक सपने महक उठेंगे....उसने उस दिन देर तक "एयरपोर्ट" पर खड़े–खड़े भविष्य के अनेक खाके बना डाले थे। उसने अपने भीतर की इच्छा को अब किसी भी हालात में दबने नहीं देना।

उसने अपना पुख़्ता फैसला घर वालों को सुना दिया था।

पापा कड़के थे, "क्या करेगा विदेश में जाकर...? वहाँ क्या इतना आसान है पैसा कमाना?"

वह भी तैश में बोला था, "यहाँ भी तो धक्के खा रहा हूँ...वहाँ जाकर कुछ तो करुँगा ही..."

"वहां जाना क्या इतना आसान है...?" पापा फिर रौबीले स्वर में बोले थे।

वह मिमियाया था, "मैंने कब कहा है...लेकिन कोशिश करने में क्या हर्ज है..."

"और ढेर–सा पैसा भी लगता है...पता है?"

"पैसा लगाकर भी अगर ज़िन्दगी बन जाए...तो क्या बुरी बात है।"

"तो बरखुरदार....समझदारी से काम लेना होगा...इतना पैसा एकदम से निकालना कोई आसान काम है...?

"लोग भी तो अपनी औलाद के लिए इतना कुछ करते हैं..."

"मानता हूँ...पर अभी पिछले साल तेरी बहन की शादी में भी खर्च हुआ है ना...? तुमसे क्या छुपा है...?"

"पर कुछ करिए...पापा...मेरी ज़िन्दगी की धज्जियाँ उड़ रही हैं यहाँ...मेरे हिस्से के सपने मेरी झोली में डाल दो...पापा..." वह तरल हो गया था।

उसने अपनी समस्त कामनाएं पापा के आगे फैला दी थी। उसे अपनी ज़िन्दगी को टुकड़ा–टुकड़ा होने से हर हाल में बचाना है...उसे इस बात का इत्मीनान हुआ था कि उसके घर वालों ने उसकी बात को सीरियसली लिया था...माँ ने पापा को मना लिया था। अब उसके सपनों की चादर पहले से और

रंगदार हो गई थी।

उसने विदेश जाने की सभी भौतिक औपचारिकताओं की सभी आचार संहिताएं पूरी कर ली थीं। अब उसके दिमाग के घोड़े किसी सार्थक दिशा में दौड़ने लगे थे। उसे इस बात का फ़ख्र हुआ था कि उसकी माँ ने पापा को मनाने में सभी तरह की कोशिशें दाँव पर लगा दी थीं। माँ के लिए उसके दिल से ढेर सी दुआएं निकलती रही थीं उन दिनों...

अब वह अक़्सर विदेश के सपने लेने लगा था।

अभी उसको सपनों की दुकानों का अता–पता करना था...फिर...विदेश भिजवाने वाले ऐसे ढ़ेर से सपनों के सौदागर मिल जाएँगे यहाँ...जहाँ विदेश की धरती के अनेक तिलिस्मी द्वार खुलते हुए प्रतीत होते हैं...एक बार तो आदमी विदेश के ख़्वाबों की तिलिस्मी दुनिया में विचरने लगता है...पिछले दिनों से उसने भी स्वयं को विदेश के अनेक तिलिस्मी शहरों में विचरते हुए पाया था...उसके सपनों में अब पराए शहरों के पराए लोग आने लगे हैं...

उसे लगने लगा था...जैसे वह हवाई जहाज़ में चढ़ा हुआ है...उसके आगे पीछे चमचमाती विदेशी कारें हैं...गगनचुम्बी इमारते हैं...दुनिया भर के तमाम ऐशो–आराम उसकी झोली में आ गिरे हैं...

लेकिन...एक एक करके सभी औपचारिकताएं पूरी करनी थीं। फिर हर बार उसे टूटना पड़ा था। कहाँ कहाँ नहीं गया वह...कभी कोर्ट–कचहरी...कमेटी के दफ़्तर में...कभी कहीं... इसके लिए पैसा भी फिर चाहिए...ढेर सारा।

उसे इस बात का इत्मीनान हुआ था कि उसे पापा का सहयोग हर कदम पर मिला था। वह भी उसकी इस दौड़ में अंधे घोड़े की तरह भाग रहे हैं...इसके लिए वह हर वक़्त तैयार मिलते हैं। इस बीच कितनी यात्राओं के सहभागी रहे हैं पापा...नई दिल्ली...कभी लुधियाना...कभी जालन्धर...कभी चण्डीगढ़...कभी हार नहीं मानी है उन्होंने...किस तरह भीतर तक पुख़्ता हो रहे हैं पापा...

उस दिन माँ की आस्था फूट पड़ी थी, "भगवान तुम्हें कामयाबी बख़्शे...दिन रात भागदौड़ कर रहे हैं...तेरे पापा भी तो तेरी इस दौड़ में शामिल रहे हैं..."

"मैंने कब इनकार किया है, सभी मिलकर जुटे हैं...माँ...काम बन जाएगा...दुआ करना...लगभग सारा काम हो गया है..."

"फिर भी बेटे डर लगता है...ज़माना खराब है...मैं तो कहती हूँ तेरा काम ठीक हो जाए...तुम्हारा सपना साकार हो मेरे पुत्तरा..."

"अब तो हो गया समझो काम...कुछ महीनों की बात है...फिर आप लोग मुझे दिल्ली "एयरपोर्ट" पर छोड़ने जाओगे..."

"क्यों नहीं जाएंगे पुत्तरा...बस तेरा काम बन जाए..." माँ राम–राम करने लगी थी।

"कितनी दौड़ लगाई है...पापा ने...उनका तो मैं कर्ज़दार हो गया हूँ...कहाँ–कहाँ नहीं गए वे मेरे लिए...कितना खर्चा भी तो कर दिया है..."

माँ उसे पलोसने लगी थी, "तू क्यों चिन्ता करता है...?... बोल...?...तेरी ज़िन्दगी बन जाए...कोई एहसान थोड़ा कर रहे हैं पुत्तरा...फिर तेरी ख़्वाहिश थी ना..."फॉरेन" जाने की...?"

"माँ...मेरा सपना पूरा हो जाए...बस..." वह उत्सुक हो उठा था।

उस दिन...देर रात तक वह मम्मी–पापा की बलाएं लेता रहा था।

उसे तो अब एक ही ग़म खाए जा रहा है...अगर उसका सपना कहीं टूट गया तो वह भुरभुरा जाएगा। विदेशी धरती के अनेक तिलिस्मी द्वार अब उसके सपनों में खुलने लगे थे...वह एक आज़ाद पाखी की तरह खुले आकाश में उड़ने लगा था। उसे लगा था, अब उसके पास भी दुनिया की हर सुविधा है...वह भी अब एक नामचीन शख़्स हो गया है...उसने अपने घर की दीवारों को पुख़्ता करना है...अपने मम्मी–पापा के कदमों में दुनिया की हर चीज़ रखनी है...

उसे फिलहाल जाने कितनी यात्राएं करनी है...विदेश भिजवाने वाले सपनों के सौदागरों की दहलीजें घिसानी हैं... उनसे मंत्रणाएं करनी हैं...उनसे कितने आश्वासन लेने हैं... कितने सपनों की खरीदारी करनी है...सपनों की गठरी कन्धों पर उठाए...अंधे घोड़े की तरह भागना है...

उसे अब अहसास होने लगा है...अब उसे मंज़िल मिलने ही वाली है...

उसे एक ही बात की प्रतीक्षा है...वह कब तक इस प्रतीक्षा को ढोता रहेगा...?

उसने हर हालत में विदेश जाने का दस्तावेज़ हथियाना है...इसके लिए तमाम ताकत झोंकनी है...आख़िर उसकी ज़िन्दगी भी तो दांव पर लगी है इस वक्त...

विदेश की धरती पर उतरने के सपना अभी मरा थोड़े है...उसे ज़िन्दगी अब रंगीन होती हुई प्रतीत होने लगी है...सपने ज़िन्दा हैं...वह ज़िन्दा है...

उसके दोस्तों के विदेश से जब फोन आते हैं तो उसकी इच्छा और भी बलवती हो जाती है। उसे लगता है...वह ही अकेला रह गया है...अपने दोस्तों की बातों से वह और भी कुण्ठित हो जाता है। उसे अब एक ही चीज़ की लालसा है...कब उसका वीज़ा आए और वह दिल्ली "एयरपोर्ट" से अपने देश को अलविदा कहे...लेकिन...अभी उसका काम बना नहीं...उसकी तमाम तव्वजों इन दिनों कहीं टिक नहीं रही...

तीसरे दिन...वह हक्का–बक्का रह गया था, जब उसके एजेन्ट का फोन आया था...उसका वीज़ा आ गया था...उसे दुनिया की समस्त रंगीनियाँ घूमती हुई लगी थीं...उसे जैसे

पंख लग गए थे...

वह इस ख़बर को बांटना चाहता था, तुरंत...उसे फिलहाल पापा के आफिस से लौटने की प्रतीक्षा थी। माँ तो भीतर तक विभोर हो उठी थी, इस समाचार से।

रात को घर उत्सवस्थली हो गया था।

"तुम्हें कहा था ना, तुम्हारा काम हो जाएगा...देखा आ गया ना वीज़ा?"

पापा ने उत्सुकता में कहा था।

"आप भी बीच–बीच में टूटने लगे थे..." वह बोला था।

"ऐसे कामों में देर हो ही जाती है...पुत्तर...तुम्हारी रब्ब ने सुनली...वरना...फिजूल में सोचने लगा था मैं भी..."

"चलो...अब चिन्ता दूर हुई...यहाँ रहते टूटना ही था... ज़िन्दगी में यही सपना देखा था पापा...और इस सपने को पूरा करने में आपने भी अपना पूरा जोर लगा दिया..."

"सब किस्मत की बात है पुत्तर...तेरी किस्मत में विदेश जाना लिखा था तो कौन टाल सकता था...अब तैयारी करनी होगी... अगले महीने तक तुम्हें फलाइट लेनी है...अब तो खुश है ना?"

वह बोला था, "लगता नहीं कि मेरा सपना पूरा हो रहा है. ..यक़ीन ही नहीं आता..."

पापा उछल पड़े थे, "शुक्र कर भगवान का...आज मंगलवार है...हनुमान के मन्दिर जाकर माथा टेकना है...हमारे साथ... भगवान की कृपा हो गई हम पर..."

उस रात सभी जने मिशन रोड वाले हनुमान मन्दिर में "परसाद" चढ़ाने गए थे। उस रात खाना भी बाहर ही से खाया था....पापा ने खुशी में अच्छी–खासी पार्टी दे डाली थी। माँ मनौतियां मांगने लगी थी...वह भीतर तक हिलौर उठा था।

अगले दिन कैसे गुजरे, पता ही नहीं चला था।

रिश्तेदार तथा आस–पड़ोस वाले बधाइयाँ देने आते रहे थे घर मे। कई दिनों तक टेलिफोन की घण्टियाँ वक़्त–बेवक़्त बजती रही थीं। उसे लगा था, वह दुनिया की नज़रों में एक महत्वपूर्ण शख़्स हो गया है...बधाई देने वालों का तांता लग गया था...

उसकी निश्चित तारीख आ गई थी। वह खुशी में उफ़नता रहा था...बीच–बीच में घर छोड़ने की उदासी भी उसे तोड़ने लगी थी...वह दहल उठा था।

उसे लगा था, वह दिल्ली "एयरपोर्ट" पर खड़ा है...मम्मी–पापा. ...सभी उसे छोड़ने आए हैं...रिश्तेदार भी आए हैं...दीदी भी....जीजा जी भी...सभी हिदायतें दे रहे हैं...तस्सलियाँ दे रहे हैं...उसकी आँखों में आँसु ढुलक आए हैं...माँ और सुधा दीदी का रोता हुआ चेहरा उसे तोड़ जाता है...पापा किसी नुक्कड़ में खड़े...चश्मा उतारने के बहाने आँसू पोंछ रहे हैं...वह कुछ भी कह नहीं पाता...बस दूर से सभी के उदास चेहरों को निहार रहा है...चुपचाप...उसका सपना पूरा हो गया है...अब वह उदास नहीं रहेगा...कभी नहीं...।

आधुनिक

संजय वर्मा "दृष्टी "
125 शहीद भगतसिंग मार्ग
मनावर जिला धार (मप्र)
मो.–9893070756

क्या जिंदगी आधुनिक हो गई
अब कोई नहीं देखता
दीवार पर धूप आने का समय
पूछने का किसी के पास समय नहीं
क्या जिंदगी आधुनिक हो गई!
पांव छूना तो जैसे खड़ा हो
विलुप्ति की कगार पर
काम के बोझ तले थके बुजुर्गों के पग
नहीं दबाए जाते अब क्यों
क्या जिंदगी आधुनिक हो गई!
चश्मे के नम्बर बढ़ गए
सुई में धागा नहीं डलता
कांप रहे हाथ कोई मदद नहीं
बूढ़ों को संग ले जाने में
शर्म हुई पागल अब क्यों
क्या जिंदगी आधुनिक हो गई!
घर के पिछवाड़े से
आती बुजुर्गों की खांसी की आवाजें
कोई सुध लेने वाला क्यों नहीं
संयुक्त दिखते परिवार
मगर लगता अकेलापन
कुछ खाने की लालसा
मगर कहने में संकोच क्यों
क्या जिंदगी आधुनिक हो गई!
बुजुर्गो का आशीर्वाद /सलाह /अनुभव
पर लगा हो भाग दौड़ भरी जिंदगी में जंग
उनके पास बैठ बतियाने का समय क्यों नहीं
गुमसुम से बैठे पार्क में
और अकेले जाते धार्मिक स्थान अब क्यों
क्या जिंदगी आधुनिक हो गई!
बुजुर्ग हैं तो रिश्ते हैं, नाम है, पहचान है
अगर बुजुर्ग नहीं तो
बच्चों की कहानियाँ बेजान हैं
ख्याल, आदर सम्मान को
लोग करने लगे नजर अंदाज अब क्यों
क्या जिंदगी आधुनिक हो गई!

1–स्मार्ट सिटी की धुंध में दुष्यंत की स्मृतियाँ

पता नहीं
यह आश्वासन है
स्मृतियों के विस्थापन का
या सुनिश्चित् उपक्रम है
स्मृतियों के उन्मूलन का,
किंतु इतना तो स्पष्ट है
कि नहीं है
तमसो मा ज्योतिर्गमय का आदर्श
दिख रहा बस
तमस है... तमस है...
तमस रचित षड्यंत्र है ।
ढहा दिया
साहित्यिक असंवेदनशीलता
के ज्वार ने
घर दुष्यंत कुमार का
और अब तैयारी है
संग्रहालय भी ढहाने की ।

स्मार्ट सिटी की धुंध में
दुष्यंत की स्मृतियाँ
हो जायेंगी धूमिल
बचेंगे सिर्फ
मन्दिर. मस्जिद और चर्च
किंतु नहीं बचेंगी स्मृतियाँ
देश को साहित्य की नहीं
इबादतगाहों की जरूरत है
साहित्य
सरकारें नहीं बना सकता न !

2–विश्वगुरु की राह पर

सरस्वती के मन्दिर में
सात साल के बच्चे की हत्या
पाँच साल की बच्ची से बलात्कार
लड़कियों को छेड़ते आचार्य
अब आश्चर्यचकित नहीं करते
भारत की भीड़ को
जो पढ़ती है आये दिन
ऐसे ही समाचार,
फिर भी विश्वास है
कि हम बनेंगे विश्वगुरु
बस, थोड़ी देर और रुकिए
होने ही वाला है कोई "चमत्कार"
यह आश्वासन सुनते–सुनते
बीत गये कई साल ।
और यह भी तो चमत्कार ही है
कि झूठ पर करने लगे हैं हम
इतना विश्वास ।

3–शिक्षा

शिक्षा का व्यापारीकरण
किया किसने ?
गाँव की भोली को
कोठे तक पहुँचाया किसने ?
सवाल केवल दो हैं
जिन्हें
न कोई पूछता है
न कोई उत्तर देना चाहता है ।

4–विद्या

भौतिक भव्यता के आकाश में
छितरा है डार्क मैटर ।
वहाँ कक्षायें लगेंगी
फोटॉन्स की
और बहेगी एक ज्ञानगंगा
जिसमें होंगे चमकते हुये
असंख्य सूर्य ।
विश्वास किया था
वंचितों ने
और सौंप दिया अपना सब कुछ
भव्यता के अहंकार में
सिर उठाये विद्यालय के
प्राचार्य को,
फिर छले गये
लूटे गये
और हो गये विवश
बहाने को अश्रु
शेष जीवन भर ।
और तब जान पाये
यह रहस्य
कि शिक्षा के बाजार में
विद्या कब बिकी है भला !

5–एक ही वृक्ष की

मैंने क्रोध से देखा था
उस गंवार को
जिसने कहा था एक दिन
कि आधुनिक विद्यालय
और चकलाघर
दोनों शाखायें हैं
एक ही वृक्ष की
जो डूबी हैं पूरी तरह
गहन अंधकार में
और
जहाँ नृत्य करती है लक्ष्मी
सुकुमार लोगों के चीत्कार पर ।
अब मुझे भी लगने लगा है
कितना सच कहा था
उस अशिक्षित ने
जिसे
इतने विलम्ब से समझ पाया हूँ मैं ।
सचमुच
यह देश कितना मुग्ध है
मृगया संस्कृति पर !

डॉ कौशलेन्द्र
सनसिटी, जगदलपुर
मो.–9424137109

न जाने कितनी कविताएं

न जाने कितनी कविताएं
खो जाया करती हैं
कभी चौके में
सब्जी बघारते हुए
कभी आंगन में
कपड़े सुखाते हुए
कभी आंगन को
झाड़ू से बुहारते हुए
और कभी नींद से
जागते हुए।

ये कविता
खो जाने का सिलसिला
आज या कल का नहीं
न जाने कितने बरसों का है...

ऐसा नहीं कि
मैं खोई हुई कविता को
खोजती नहीं...!
खोजती हूं....!

और कोशिश करती हूं
इसे सलीके से
सम्हाल कर रख दूं....!
यह सोच कर कि
क्या पता कल
वक्त मिले न मिले....
फिर गुम होंगी तो
शायद मैं न खोज पाऊंगी...!
क्योंकि समय की धारा
तो बस रोज ही
बह के निकल
जाया करती है....
और हम समय के
हाथों नाचते
कठपुतली की तरह...
कभी कविता सम्हाले
और कभी रोटी,
सब्जी, और झाड़ू
को सम्हालने में....
पर अक्सर ऐसा होता
नहीं मिलती मेरी
वो कविता जिसे
मैं ढूंढा करती हूं...!

हां, मुझे उसके बदले
मिल जाती हैं
कोई और कविता
जो कभी और
मेरी यादों से
छूट गई थी....
जिसे मैंने
न सम्हाला हो...
कहीं अनचाहे
यादों के ताखे में छोड़
भूल गई होऊंगी...!
जो खोज में
निकल पड़ूं तो....
ढूंढ ही लेती हूं
अपनी खोई हुई
एक कविता....
हम क्यों करते हैं
अपने पर ज्यादती
अपने हृदय की
अंकुरित पंक्तियों को
न ही हम उसे
और बड़ा होने दे पाते
न ही उन्हें हम
अपने भावों से
सिंचित कर पाते....
बस हम हर रोज
एक कविता न जाने
कहां रख भूल जाते...
न जाने कहां
रख भूल जाते...!

गुलमोहर

गुलमोहर
ऐ गुलमोहर
तुझसे ही
सीखा है मैंने
तपती धूप में भी
मुस्कुराना
खिलखिलाना
हल्के झोंकों के साथ
कहकहे लगाना
सच बड़ा सुकून
मिलता है...
तपिश के साथ
मुस्कुराने में
खिलखिलाने
व कहकहे लगाने में
एक ही पल में
सारी उष्णता व
तपिश रफू चक्कर
हो जाती है.....
बस यही ख्वाहिश है
मैं बन जाऊं गुलमोहर
खिलखिलाती रहूं
हर पल
न हो कभी
तपिश का डर
कटने की या धराशाई
होने की चिन्ता
क्योंकि .....
न जाने अभी
कितनी सड़कों का
चौड़ीकरण...
अभी बाकी है,
कितनी गगनचुम्बी
इमारतें
अभी बननी बाकी हैं।
और
इन सब के लिए...
धराशाई होना है....
गुलमोहर को....
और
इस धरा की
बेशकीमती
हरियाली को....
मैंने देखा है...
हरियाली को
कुम्हलाते हुए
मुरझाते हुए....
क्योंकि
एक खौफ
रहता है
मिट जाने का
और तुम
विजयी हो चुकी हो
सारे खौफ, कष्ट व
तकलीफों से....
इसी लिए तो सदैव
मुस्कुराती हो
खिलखिलाती हो
और.....
कहकहे भी
लगाती हो...

सतरूपा मिश्रा
जगदलपुर
मो.–9424289895

नक्कारखाने की तूती

यह शीर्षक हमारे उन विचारों के लिए है जो लगातार हमारा दम घोंटते हैं परन्तु हम उन्हें आपस में ही कह सुन कर चुपचाप बैठ जाते हैं। चुप बैठने का कारण होता हैं हमारी 'अकेला' होने की सोच! इस सोच को तड़का लगता है इस बात से कि 'सिस्टम ही ऐसा है क्या किया जा सकता है, और ऐसा सोचना पागलपन है।' हर पान की दुकान, चाय की दुकान और ट्रेन के सफर में लगातार होने वाली ये हर किसी की समस्या होती है, ये चिन्ता हर किसी की होती है। और सबसे बड़ी बात कि समस्या का हल भी वहीं होता है। ऐसी समस्या और उसका हल जो दिमाग को मथ कर रख देता हैं उनका यहां स्वागत हैं। तो फिर देर किस बात की कलम उठाईये और लिख भेजिए हमें।

न जाने कितनी कविताएं

क्या हमारे जीवन में कुछ भी करने का अधिकार सिर्फ सरकार का है ? दूसरे शब्दों में कुछ भी करने का कर्तव्य सिर्फ सरकार का है ? दोनों एक विपरीत अर्थ वाले वाक्य है परन्तु एकदूसरे से सिक्के के पहलुओं की तरह जुड़े हैं।

शहर का एक बड़ा पुराना तालाब है जिसका नाम है 'दलपत सागर'। ये तालाब शहर के समस्त कुओं से लेकर नलकूपों के जलस्तर को बनाये रखता है। बारहों महीने शहर में पानी की कभी किल्लत नहीं होती है। आज वहीं तालाब अपने अस्तित्व के लिए तड़प रहा है। उसमें शहर के सभी गंदे नाले जोड़ दिये गये हैं। बरसात में शहर के समस्त निस्तारी मार्गों को कालोनियों ने दबा दिया है। लगातार बरसात से तालाब का पानी बदल भी जाता था, अब वो भी बंद है। तालाब के किनारों को मिट्टी डाल डाल कर पाटा जा रहा है। हर बरस उस तालाब का रकबा कुछ कम हो जाता है।

हमारे देश में किसी सरकारी जमीन पर कब्जा करने को आसान तरीका है उस पर सबसे पहले मंदिर, मजार या मस्जिद बना ली जाए और फिर धीरे धीरे उसके आस पास बसते जाओ। किसी भी सरकार में हिम्मत नहीं कि वह किसी धर्मस्थल को तोड़ सके, हटा सके। इस ढंग से खाली मैदान, जंगल और तालाब खत्म होते जा रहे हैं। वास्तव में हम स्वयं ही खुद के पैरों पर कुल्हाड़ी मार रहे हैं।

किसी भी शहर, नगर या ग्राम के बसने के लिए उसके पास पानी की आपूर्ति का निर्बाध साधन जरूरी होता है। जितने भी पुराने शहर बसे हैं उनके पास से नदी या नाला जरूर बहता है। या फिर तालाबों से शहर को घेर कर रखा गया है। जिन पर व्यवस्था की जिम्मेदारी है वही लोग व्यवस्था को अव्यवस्था में बदल रहे हैं, तो फिर कौन आयेगा हमें बचाने। जब अवैध कब्जा किया जाता है तो उन्हें रोका नहीं जाता है और जब वो सब बस जाते हैं तो उन्हें वहां से हटाना बहुत ही मुश्किल काम होता है। आजकल तो पार्षद से लेकर नेता तक सरकारी जमीनों में अवैध कब्जा करवाते हैं। और तो और निजी जमीनें भी अछूती नहीं रही हैं। जंगल साफ करके जगह बनाते तो सुना था पर आजकल लोग किसी बड़े फले फूले पेड़ को काटकर अपना मकान बना लेते हैं। उसकी जड़ों में मिट्टी का तेल और तेजाब डाल कर उसे गिरा देते हैं।

यहां प्रश्न ये है कि इन सभी बातों का जिम्मेदार कौन है ? कौन है जो प्रकृति के साथ छेड़खानी कर रहा है ? क्या सिर्फ सरकार इसे दूर कर सकती है ? या फिर वह प्रकृति की रक्षा कर सकती है ?

मेरा मानना है कि सरकार जिस भी चीज के संरक्षण में हाथ लगाती है उसका समूल नाश हो जाता है। हमारी घटिया सोच के चलते हमने सरकारी चीजों को आंदोलनों के सहारे यूं साबित कर दिया है कि सरकारी सरंक्षण हमारा अधिकार है और उसकी आड़ में लूटपाट हमारा कर्तव्य! सरकार का है यानी किसी का नहीं है जबकि वो सबका है। रेलवे स्टेशन और पटरियां दुनिया की सबसे बड़ी शौच की व्यवस्था है। सरकारी कार्यालय में कार्यालयीन समय के बाद दारू का दौर चलता है। सरकारी स्कूलों में शौच जाना, नशा करना आदि सामान्य बात है। बैंक से जमा पर्ची आदि उठा कर ले आना और फिर फेंक देना। आम जनता अपनी घर की बिजली का आना पाई बचाती है जो बिजली वह साल में बचाती है उससे कहीं ज्यादा बिजली सरकारी कार्यालय में आधे घंटे में ही बरबाद कर दी जाती है। मैं एक केन्द्र सरकार के कार्यालय में गया तो देखा वहां एसी, पंखा और कूलर भी लगा था। सामान्यतः एसी के साथ कूलर लगा कभी नहीं देखा था।

जिस दिन सरकारी कार्यालय के बिजली का खर्च कर्मचारियों की तनखा से कटेगा उस दिन देखिए देश में बिजली सरप्लस हो जायेगी।

तालाबों को पाटकर कब्जा करना एक बहुत बड़ी समस्या है। उससे बड़ी समस्या है तालाब के संरक्षण के नाम पर टुच्चे नेताओं द्वारा नेता के बीच भ्रम फैलाना! ये लोग समस्या के समाधान के बदले उस समस्या के बने रहने का ही प्रयत्न करते हैं। अपना हिस्सा लेकर पक्ष–विपक्ष वाले मिलकर दारूबाजी करते हैं। इनको न तो जनता की चिन्ता है न ही ईश्वर का भय! जनता स्वयं ही दिग्भ्रमित है।

यादें– श्री नरसिंह महांती

नरसिंह महंती–कलाकार जो नहीं रहा

बंशीलाल विश्वकर्मा
अध्यक्ष,
आकृति कला संस्था,
जगदलपुर

प्रकृति कर बेहतरीन चित्रकार प्रकृति में ही विलीन हो गया। अंतर्राष्ट्रीय ख्यातिप्राप्त स्वं एस.एच. रजा के सहयोगी, मां दुर्गा चौक निवासी दृश्यचित्र (लैण्ड स्कोप) के महान चितेरा स्व. श्रीनिवास विश्वकर्मा (जिनका निधन 23 वर्ष की उम्र में वर्ष मई 1949 में हुआ था।) के पश्चात यह दूसरा इस अंचल का चित्रकार है जो कला की साधना में ही अपना जीवन अर्पित कर दिया।

शासकीय कार्य ये सेवानिवृत्ति के पश्चात नरसिंह महंती ने चित्रकला को ही अपना कैरियर बना लिया था। श्रीनिवास और महंती में कई समानताएं थीं। उन दोनों के आचरण, स्वभाव और चित्रकला के प्रति उनका जुनून इस हद् तक था कि रंग, कूची, कागज और केनवास ही उनके जीवन का महत्वपूर्ण अंग बन गया था।

प्रचार प्रसार से कोसों दूर एकात्म साधना उनकी दिनचर्या का अभिन्न अंग था। महंती ने कागज केनवास, कार्डबोर्ड आदि में छोटे, बड़े सैकड़ों की संख्या में पेंसिल, जलरंग एवं तैल रंगों से चित्र बनाये हैं। बोर्ड़ पर तैल रंगों में बनाए कुछ चित्र स्थानीय कला संस्था 'आकृति' के कक्ष में भी लगाए गये हैं। वे आकृति कला संस्था के उपाध्यक्ष थे।

मेरे भतीजे राजीव विश्वकर्मा का ब्याह उनकी पुत्री से होने के बाद हमारी घनिष्ठता और अधिक बढ़ी। एक दिन उनके एक दृश्य चित्र को देखकर मैंने अनायास ही पूछ लिया कि आपने पेंटिग की शिक्षा कहां से ली ? उन्होंने मुझसे कहा, जब मैं छोटा था और स्कूल में पढ़ता था तो आपको मूर्तियां बनाते और चित्रकारी करते देखा करता था। (उनका पुश्तैनी मकान मेरे मकान से लगभग 50 मीटर की दूरी पर था।) मैं अवाक था, ऐसा साधक जो बिना किसी गाइड लाइन के इतना सिद्धहस्त कलाकार कैसे हो सकता है। सरल स्वभाव, मृदुभाषी और बहुत कम बोलने वाला, किताबों का शौकिन यह कला साधक अपने जीवन के आखिरी क्षणों तक चित्रकला की बारीकियों के अध्ययन में अपनी समस्त ऊर्जा का उपयोग करता रहा। अपने चित्रों में रंग संयोजन, छाया और प्रकाश का प्रभाव देने में उनकी अच्छी पकड़ थी। पृष्ठभूमि (बैकग्राउण्ड) भी काफी प्रभावित करता था।

कुछ दिनों पूर्व से बस्तर की आदिवासी संस्कृति पर चित्र बनाना प्रारंभ किया था। उन्होंने कुछ बनाया भी है। भले ही राष्ट्रीय स्तर पर उनके बनाये चित्रों की कोई प्रदर्शनी नहीं हुई हो किन्तु उनके बनाये चित्र किसी राष्ट्रीय स्तर के चित्रकार के बनाये चित्रों से कम नहीं हैं। उनके चले जाने से बस्तर के कला जगत में जो शून्यता आई है, दशकों तक उसकी पूर्ति होना संभव नहीं लगता। कहते हैं प्रतिभाएं मरती नहीं हैं। महंती आज भी अपनी कला के माध्यम से जिन्दा है, आपके और हमारे दिलों में।

जैसा मैंने देखा

महंती जी मात्र एक चित्रकार होते तो उनके चित्रों में वो गहराई नहीं होती जो दिखाई देती है। वस्तुतः वो तो एक संवेदनशील साहित्यकार थे। ये बात अलग है कि उन्होंने कभी लिखा नहीं। उनके साथ मेरे घंटे दो घंटे जाने कब बीत जाते पता ही न चलता। साहित्य में रचनाओं के बोझिल या बेकार होने के कारण बताने में उनको काफी जानकारी थी। चित्रों में शेड्स के माध्यम से बताते कि ये रंग किस तरह से खुशियों को भरता है तो ये रंग का काम्बीनेशन किस तरह दुख समझाता है। यही शेड़स जीवन में भी होते हैं। चिंता और दुख से भरे चित्र गहरे सांवले रंगों से प्रभावी हो जाते हैं। इसी प्रकार अपनी शाब्दिक रचनाओं में भी हम सुख–दुख, हंसी–खुशी दिखाते हैं जो इसमें पारंगत हो जाता है वो बेहतरीन हो जाता है।

उनकी चर्चा से जाना कि वो एकांतप्रिय जरूर थे परन्तु उनके चित्र बताते हैं कि वो दुनिया से निरन्तर जुड़े हुए थे। खुशी भरे चित्रों की तादात कहीं ज्यादा थी। दुनिया की खुशी यानी ऋषितुल्य साधना! उनके आसपास जो कुछ भी होता वे उसे ही केनवास बना लेते। पेन, पेन्सील, रंग आदि जो मिल जाता उससे ही जीवन गढ़ लेते।

सनत कुमार जैन

पत्रिका मिली

दिवान मेरा
सम्पादक–नरेन्द्रसिंह परिहार
मूल्य–20 रूपये
पता–सी004, उत्कर्ष अनुराधा,
सिविल लाईन्स
नागपुर–440001
संपर्क–09561775384

अविराम साहित्यिकी
सम्पादक–डॉ.उमेश महादोषी
मूल्य–25 रूपये
पता–121इन्द्रापुरम, बीडीए
कालोनी के पास, बदायूं रोड,
बरेली उ.प्र.
संपर्क–09458929004

बस्तर पाति सम्मान समारोह–2019

साहित्य एवं कला समाज जगदलपुर के द्वारा प्रत्येक वर्ष की भांति प्रतिष्ठित बस्तर पाति सम्मान बस्तर के विशिष्ट साहित्यकारों को प्रदान किये गये। इसके अलावा समाजसेवा, खेल, साहित्य एवं कला के क्षेत्र में विशिष्ट प्रदर्शन के लिए बस्तर पाति अभिनंदन पत्र से सम्मानित किया गया। यह अवसर था बस्तर पाति प्रकाशन से प्रकाशित पुस्तकों के विमोचन समारोह का।

कार्यक्रम में श्रेष्ठ बुद्धिजीवियों के उपस्थिति थी। मंचस्थ अतिथियों में डॉ. शैलेन्द्र सिंह (कुलपति, बस्तर विश्वविद्यालय) मुख्य अतिथि, श्री महेश्वर नारायण सिन्हा (वरिष्ठ कहानीकार एवं चित्रकार बिलासपुर), श्री सुरेन्द्र रावल (वरिष्ठ साहित्यकार, कोण्डागांव), श्री जयचंद्र जैन (वरिष्ठ साहित्यकार एवं समाजसेवी, जगदलपुर), श्री बी.एन.आर.नायडू (वरिष्ठ साहित्यकार एवं समाजसेवी, जगदलपुर), श्रीमती मणिकुंतला बोस (संपादक, दण्डकारण्य समाचारपत्र, जगदलपुर) थे।

22 सितम्बर 19, रविवार दोपहर 1.30 बजे से आरम्भ हुए कार्यक्रम का स्थान था चेम्बर ऑफ कामर्स भवन, जगदलपुर।

पूरे कार्यक्रम का मंच संचालन सनत जैन, संपादक बस्तर पाति द्वारा किया गया। कार्यक्रम का प्रथम सत्र पुस्तक विमोचन दोपहर 1.30 बजे से आरंभ हुआ। आरंभ में गीदम से आई कु. खुशबू द्वारा देशभक्ति गीत प्रस्तुत किया गया। इसके बाद सरस्वति वंदना की गई। सनत जैन द्वारा 'बस्तर पाति प्रकाशन' का उद्देश्य एवं परिचय देने के बाद उनकी पुस्तक चिंता संग्रह अर्द्धरात्रि का ज्ञान–1 का विमोचन उनकी माता श्रीमती सरला जैन व पत्नी श्रीमती ममता जैन द्वारा और उपस्थित अतिथियों द्वारा किया गया। कृतित्व पर बात की युवा फिल्म स्क्रीप्ट राइटर कर्तव्य कृष रामटेके ने।

इसके बाद बस्तर संभाग और शेष भारत के कवियों का साझा संकलन अरण्यधारा–3 व 4 का विमोचन किया गया। इस कृतित्व पर श्रीमती वंदना राठौर ने अपनी बात रखी।

श्रीमती रजनी साहू द्वारा रचित कविता संग्रह 'स्वयंसिद्धा' के विमोचन के बाद कृतित्व पर बात सनत जैन जैन द्वारा रखी गई।

अरण्यधारा के समस्त कवियों को अरण्यधारा सम्मानपत्र के साथ अरण्यधारा की दस प्रति प्रदान की गई।

द्वितीय सत्र में बस्तर पाति सम्मान प्रदान किये गये। सम्मानित जन थे–बस्तर पाति विशिष्ट सम्मान–2017 श्री कृष्ण शुक्ल (कहानी लेखन) जगदलपुर, बस्तर पाति विशिष्ट सम्मान–2018 श्री खैम वैष्णव (बस्तर जनजीवन चित्रावली) कोंडागांव, बस्तर पाति सफल सम्मान–2017 श्री संतोष श्रीवास्तव (कहानी लेखन) कांकेर, बस्तर पाति सफल सम्मान–2018 श्री कृष्णधर शर्मा (लघुकथा) गीदम, बस्तर पाति उज्जवल सम्मान–2017 श्री विश्वनाथ देवांगन (हल्बी लेखन) कोंडागांव, बस्तर पाति उज्जवल सम्मान–2018 श्री कर्तव्य रामटेके (संपादन स्क्रिप्ट लेखन) जगदलपुर। 2017 एवं 2018 के लिए जिन उत्कृष्ट जनों का बस्तर पाति अभिनन्दन किया गया उनकी सूची इस प्रकार है–डॉ राजेश थनथराटे (उत्कृष्ट आयोजन) जगदलपुरश्री बलबीर सिंह कच्छ (हल्बी लेखन को प्रोत्साहन देने के लिए), श्री खिलेंद्र यादव (सिनेमा) कोंडागांव, श्री सुनील खेडूलकर (उत्कृष्ट फोटोग्राफी) जगदलपुर, श्री श्रीनिवास रथ (उत्कृष्ट पत्रकारिता) जगदलपुर, श्री हरीश पराशर (रक्तदान व समाजसेवा) जगदलपुर सार्वजानिक अभिनन्दन–2018 के लिए–

डॉ जयमती कश्यप (गोण्डी लेखन) कोंडागांव, श्री महेंद्र सेठिया (उत्कृष्ट पत्रकारिता) जगदलपुर, श्री प्रशांत दास (उत्कृष्ट रंगमंच) जगदलपुर, श्री सूर्य ताम्रकार (हल्बी सिनेमा निर्माण) जगदलपुर, श्री विशाल जैन आवारा (उत्कृष्ट लेखन) गीदम, डॉ प्रकाश मूर्ति (बैडमिंटन) जगदलपुर। हल्बी रंगमंच में रंगकर्म में विशेष योगदान के लिए श्री नरेन्द्र पाढ़ी को विशेष सम्मान प्रदान किया गया।

तृतीय सत्र था मेगा काव्यगोष्ठी का। जिसमें मंचस्थ अतिथिपद्मश्री ध र्मपाल सैनी (वरिष्ठ साहित्यकार, जगदलपुर), ऋषि शर्मा ऋषि (वरिष्ठ साहित्यकार, जगदलपुर) श्री एस.एसत्र त्रिपाठी(वरिष्ठ साहित्यकार, जगदलपुर), नूर जगदलपुरी (वरिष्ठ साहित्यकार, जगदलपुर), विपिन बिहारी दाश (वरिष्ठ साहित्यकार, जगदलपुर)। रायपुर, बिलासपुर, बीजापुर, कांकेर, बचेली, गीदम, दंतेवाड़ा, नारायणपुर, डिमरापाल, कोण्डागांव, जगदलपुर आदि स्थानों से कार्यक्रम में सम्मिलित होने के लिए आये थे।

उल्लू सम्मेलन, हास्य कवि सम्मेलन–2020

जगदलपुर शहर की जीवंत और प्रबुद्ध जनता व जेसीआई जगदलपुर की जोश से भरी युवा कमेटी के तन मन धन के सहयोग से 9 मार्च 20 की शाम हास्य से सरोबार हो गई। अखिल भारतीय हास्य कवि सम्मेलन–20 को सुनने उमड़ी जनता ने हंस–हंस कर होली की शुरूआत की। बीजापुर के युवा कवि पुरूषोत्तम चंद्रकार ने अपनी चार–चार लाइनों से जनता को रोक रखा था। सफलतम कार्यक्रम में आधी रात तक भीड़ ने अपनी सीट न छोड़ी।

अपने चुटीले अंदाज में मच संचालन कर रहे बस्तर पाति के संपादक व साहित्य एवं कला समाज के अध्यक्ष सनत सागर पूरे समय बस्तर पाति बांधे रखा। हमारे बस्तर की शान हरिओम पवार की भांति लंबी–लंबी कविताओं को मुखाग्र पढ़ने वाले युवा शौर्य कवि बाबू बैरागी ने जमकर देश के गद्दारों को गरियाया। अपनी कविताओं में वर्तमान की समस्त घटनाओं को समेटकर शानदार ढंग से पढ़कर सबका मन जीत लिया। गीदम के लोकेश दादा ने अपनी हास्य पैरोडी से खूब हंसाया। तो दंतेवाड़ा के मिमिक्री मास्टर अमित पूरब ने अपनी मिमिक्री से सबको लुभाया। गीदम के विशाल आवारा ने अपनी सुप्रसिद्ध रचना ''पप्पू कामेडियन नाम तुम्हारो'' पढ़कर विशेषकर युवाओं को खूब मस्ती दी।

जगदलपुर शहर की उदीयमान युवा कवयित्री ममता मधु ने अपनी हास्य पैरोडी से गुदगुदाया। खुशबू कस्तूरी ने अपनी रचना 'मंदिर वहीं बनेगा' पढ़कर लोगों में जोश भर दिया। प्रकाश मूर्ति पैमाना ने अपनी कविता में बलात्कार पर चिंता व्यक्त की। नागपुर से आये कवि ने चुटकुलों के माध्यम से जनता को हंसाया।

जेसीआई जगदलपुर सिटी के वर्तमान अध्यक्ष राहुल राज मोदी, पूर्व अध्यक्ष विपिन मालवीय, अनिल मद्दी, अरविंद कौशिक ने इस मंच से शहर की विख्यात और कर्मशील महिलाओं को महिला दिवस पर सम्मानित किया। सुश्री अनिता राज को उनकी दानशीलता सहृदयता के लिए, डॉ सरिता मनोज थॉमस को पच्चीस हजार आंखों के सफल आपरेशन के लिए और छत्तीसगढ़ की प्रथम पर्वत विजेता नैना धाकड़ को उनकी उपलब्धियों के लिए सम्मानित किया। राहुल जी ने कहा कि इन महिलाओं से समाज अवश्य ही प्रेरणा लेकर कीर्तिमान स्थापित करेगा।

अंत में सनत सागर ने समस्त दानदाताओं और सहयोगियों का धन्यवाद ज्ञापित किया।

बस्तर पाति–साहित्य सेवा

''बस्तर पाति'' मात्र पत्रिका प्रकाशन ही नहीं है बल्कि इस क्षेत्र का साहित्यिक दस्तावेज है। हम और आप मिलकर तैयार करेंगे एक नई पीढ़ी; जो इस क्षेत्र का साहित्यिक भविष्य बनेगी। मिलजुलकर किया प्रयास सफल होगा ऐसा विश्वास है। हमें करना यह है कि लोगों के बीच जायें उनके बीच साहित्यिक रूचि रखने वाले को पहचाने और फिर लगातार संपर्क से उन्हें लिखने को प्रेरित करें। उनके लिखे को प्रकाशित करना ***''बस्तर पाति''*** का वादा है। रचनाशील समाज रचनात्मक सोच से ही बनता हैं, ये सच लोगों तक पहुंचाने के अलावा रचनाशील बनाना भी हमारा ही कर्तव्य है। लोक संस्कृति के अनछुए पहलूओं के अलावा जाने पहचाने हिस्से भी समाज के सम्मुख आने ही चाहिये। आज की आपाधापी वाली जिन्दगी में मानव बने रहने के लिए मिट्टी से जुड़ाव आवश्यक है। खेत–किसान, तीज–त्यौहार, गीत–नाटक, कला–संगीत, हवा–पानी आदि के अलावा घर–द्वार, माता–पिता से निस्वार्थ जुड़ाव की जरूरत को जानते बूझते अनदेखा करना, अपने पांवों कुल्हाड़ी मारना है, इसलिए हमारी सोच के साथ जीवन में भी साहित्य का उतरना नितांत आवश्यक है। साहित्य मात्र कुछ ही पढ़े–लिखे लोगों की बपौती नहीं है बल्कि लोक की सम्पदा है इसलिए सभी गरीब–अमीर, पढ़े–लिखे लोगों को जोड़ने की बात है। कला की प्रत्येक विधा हमें मानव जीवन सहेजने की शिक्षा देती है। हां, ये अलग बात है कि हम उसे समझना चाहते हैं या फिर समझाना नहीं चाहते हैं। लोक जीवन, लोक संस्कृति और लोक साहित्य, इन सभी में एक ही विषय समाहित है, एक ही आत्मा विराजमान है, इसलिए किसी एक पर बात करना ही हमें मिट्टी से जोड़ देता है, हमें मानव बने रहने पर मजबूर कर देता है।

मेरा निवेदन है कि हम अपने क्षेत्र के लोगों को ***''बस्तर पाति''*** से जोड़ें और उन्हें अपनी रचनात्मक भूमिका निभाने के लिए प्रोत्साहित करें। ***''बस्तर पाति''*** के पंचवर्षीय सदस्य बनकर इस साहित्यिक आंदोलन के सक्रिय सहयोगी बनें। ***''बस्तर पाति''*** को मजबूत बनाने के लिए आर्थिक आधार का मजबूत होना आवश्यक है। इस छोटी–सी किरण को सूरज बनना है और आप से ही संभव है, इसलिए रचनात्मक सहयोग के साथ ही साथ आर्थिक सहयोग प्रदान करते हुए आज ही पंचवर्षीय सदस्य बनें। अपने मित्रों को जन्मदिन और सालगिरह पर उपहार स्वरूप पंचवर्षीय सदस्यता दें। याद रखें, ज्ञान से बड़ा उपहार हो ही नहीं सकता है। हमारा पता है–

सदस्यता फार्म

मैं ***''बस्तर पाति''*** हिन्दी त्रैमासिक का पंचवर्षीय सदस्य बनना चाहता हूं। कृपया मुझे सदस्य बनायें। मेरा नाम व पता निम्नानुसार है–

नाम–.....

पता–.....

.....

.....

.....

शिक्षा–.....**अन्य जानकारी**.....

.....

मोबाइल नं.–.....**ईमेल**.....

500/– (रूपये पांच सौ) नगद/ मनीआर्डर / अकाउंट नंबर 10456297588 एसबीआई जगदलपुर (आईएफएस कोड 00392) द्वारा भेज रहा हूं। दिनांक–

हस्ताक्षर

प्रति,

''बस्तर पाति''
साहित्य एवं कला समाज
सन्मति गली, सन्मति इलेक्ट्रीकल्स, दुर्गा चौक के पास, जगदलपुर जिला बस्तर छ.ग. पिन–494001
मो.–09425507942 ईमेल–paati.bastar@gmail.com

बस्तर पाति के लिए विज्ञापन दर

पत्रिका में स्थान (मल्टीकलर)	***दर प्रति अंक***
पिछला पेज	
पूरा	***10000/–***
आधा	***5000/–***
पिछले से पहला	
पूरा	***5000/–***
आधा	***3000/–***
मध्य के दो पेज पूरे (ब्लैक एण्ड व्हाइट)	***20000/–***
भीतर के पेज में कहीं भी	
पूरा	***2000/–***
आधा	***1000/–***
एक चौथाई	***500/–***
सभी पेज में नीचे एक लाइन की विज्ञापन पट्टी	***10000/–***

ध्यान रखिए, आपका सहयोग साहित्य एवं हिन्दी के प्रसार में उपयोग होगा।

कविता कैसे बदले तेरा रूप

कविता का रूप कैसे बदलता है देखें जरा। नये रचनाकार ने लिखा था, नवीन प्रयास था इसलिए कसौटी पर खरा नहीं उतरा। उसी कविता को कैसे कसौटी पर खरा उतारें–

मजदूर

मजदूर तेरा काम ही है काम करना
दुनिया भर की सड़क, भवन, पुल बनाना
दुनिया भर के उद्योग–धंधे दौड़ाना,
दुनिया भर के बांध बना कर बिजली बनाना।
पसीने की बूंदों से ईटें जुड़ती हैं
तब बनता है भवन
कई बार तो तेरा तन भी समा जाता है
उस भवन के गारे में
तो बिजलीघर की भट्टी में।
तो कभी–कभी जहर में समा जाता है
तेरी पूरी की पूरी आत्मा
अपने तन को खाली करके
किसी बेशरम की तरह।
सड़कों पर गिट्टी में मिले कोलतार की तरह
कई बार तेरा लहू भी तो मिल जाता है
सड़कों की चिकनाहट में।

यही कविता कुछ अन्य पंक्तियां जोड़ने पर देखें कैसे रूप बदलकर रोमांचित करती है–

मजदूर

मजदूर तेरा काम ही है काम करना
दुनिया भर की सड़क, भवन, पुल बनाना
दुनिया भर के उद्योग–धंधे दौड़ाना,
दुनिया भर के बांध बना कर बिजली बनाना।
पसीने की बूंदों से ईटें जुड़ती हैं
तब बनता है भवन
कई बार तो तेरा तन भी समा जाता है
उस भवन के गारे में
तो बिजलीघर की भट्टी में।
तो कभी–कभी जहर में समा जाता है
तेरी पूरी की पूरी आत्मा
अपने तन को खाली करके
किसी बेशरम की तरह।
सड़कों पर गिट्टी में मिले कोलतार की तरह
कई बार तेरा लहू भी तो मिल जाता है
सड़कों की चिकनाहट में।
ब्रहमा का काम है दुनिया का निर्माण
तो शिव का काम है प्रकृति का निर्माण।

फेसबुक वॉल से

पल्लवी झा (रूमा)
रायपुर छत्तीसगढ़
की वॉल से

मयखाने का असर

मोहल्ले के पीछे घर से
अक्सर आती थी
कुछ विचित्र आवाज़ें
कभी लड़ने–झगड़ने
कभी चीखने–चिल्लाने
और कभी तो हाथापाई की।
कभी वक्त–बेवक्त
चीख–पुकार सुनकर
मेरे बच्चे सहम से जाते थे
कभी हम सुरक्षा की नीयत से
दौड़े–दौड़े छत पर जाते थे ।
अचानक कुछ हुआ ऐसा परिवर्तन
अधिकतर उस घर से अब
कुछ सुखद सुरीली सी
आवाजें आने लगी
हम सबके कानों को जो भाने लगी
हर वक्त हँसी –ठिठोली और
कभी–कभी पकवानों की खुशबू
बिखर कर आने लगी ।
एक दिन बच्चों ने मुझसे पुछा ही लिया
आखिर उस घर में हुआ क्या अजब परिवर्तन?
मैंने कहा! ये लॉकडाउन का कमाल है मेरे बच्चों ।
अब मधुशाला जो बंद पड़ी है
खुशियों की इन्हें सौगात मिली है
हँसता–खेलता रहे यूँ ही इनका परिवार
कभी न जाये कोई मयखाने के द्वार ।
जाने कैसे इनके खुशियों को
लग गयी किसी की नज़र
अब मयखाने खुलने की
मंजूरी जो मिल गयी है कल ।
सोच रही हूँ मैं अब चुपचाप
कल पड़ोसी फिर पीकर के आयेगा
घर में धमा–चौकड़ी फिर से मचायेगा
पत्नी से करके मार–पीट वो
बच्चों पर फिर से चिल्लायेगा
रोजी–रोटी का भी नहीं रहा आसरा
तो क्या इनके निवाले छिनकर
मदीरा वो पीकर आयेगा ?
अपनी मदिरा की बोतल में
वो परिवार की खुशियां डुबायेगा।

बस्तर पाति को मूर्तरूप देने वाले सहयोगी

संस्थापक सदस्यः–

श्री एम.एन.सिन्हा, दल्ली राजहरा छ.ग.
श्री आशीष राय, जगदलपुर, छ.ग.
श्री अमित नामदेव, रायपुर, छ.ग.
श्री गौतम बोथरा, रायपुर, छ.ग.
श्री कमलेश दिल्लीवार, रायपुर, छ.ग.
श्री सुनील अग्रवाल, कोरबा, छ.ग.
श्री संजय जैन, भाटापारा, छ.ग.
श्रीमती ममता जैन, जगदलपुर, छ.ग.
श्री सनत जैन, जगदलपुर, छ.ग.

परम सहयोगीः–

श्रीमती उषा अग्रवाल, नागपुर
श्री महेन्द्र जैन, कोण्डागांव
श्री आनंद जी. सिंह, दंतेवाड़ा
श्री विमल तिवारी, जगदलपुर
श्री उमेश पानीग्राही, जगदलपुर

सदस्यः–श्रीमती जयश्री जैन, श्रीमती रचना जैन, शमीम बहार, मनीष अग्रवाल जगदलपुर, श्याम नारायण श्रीवास्तव रायगढ़, श्रीमती अशलेषा झा, नलिन श्रीवास्तव राजनादगाव, ऋषि शर्मा 'ऋषि', बीरेन्द्र कुमार मौर्य जगदलपुर, टी आर साहू दुर्ग, श्रीमती गुप्तेश्वरी पाण्डे जगदलपुर, श्रीमती बरखा भाटिया कोण्डागांव, निर्मल आनंद कोमा, राजिम, कांति अरोरा बिलासपुर, राजेन्द्र जैन भिलाई, मिश्रा जी, नूर जगदलपुरी जगदलपुर, हरेन्द्र यादव कोण्डागांव, महेन्द्र यदु कोण्डागांव, एस.पी.विश्वकर्मा कोण्डागांव, सुश्री उर्मिला आचार्य जगदलपुर, श्रीमती प्रभाती मिंज बिलासपुर, श्रीमती सोनिका कवि, जितेन्द्र भदोरिया जगदलपुर, आर.बी. तिवारी महासमुंद, मे. होटल रेनबो जगदलपुर, संजय मिश्रा रायपुर, इश्तियाक मीर जगदलपुर, सोनिया कुशवाह, श्रीमती पूर्णिमा सरोज रूपाली सेठिया, राजेश श्रीवास्तव, महेन्द्र सिंह ठाकुर, चंद्रशेखर कच्छ, में.पदमावती किराना स्टोर्स, दिलिप देव, तृप्ति परिडा, धरमचंद्र शर्मा, हेमंत बघेल जगदलपुर जी.एस. वरखड़े जबलपुर, लक्ष्मी कुडीकल जगदलपुर, अनिल कुमार जयसवाल भिलाई, वीरभान साहू रायपुर, प्रीतम कौर, मनीष महान्ती, प्रणव बनर्जी, शेफालीबाला पीटर, यशवर्धन यशोदा, शरदचंद्र गौड़, सुरेश विश्वकर्मा श्रीमती शांती तिवारी, विनित अग्रवाल, एन.आर. नायडू, श्रीमती मोहिनी ठाकुर, जयचंद जैन, कुमार प्रवीण सूर्यवंशी, भरत गंगादित्य, मिनेष कुमार जगदलपुर, शिव शंकर कुटारे नाराणपुर, सुशील कुमार दत्ता जगदलपुर, अखिल रायजादा बिलासपुर, श्रीमती दंतेश्वरी राव कोण्डागांव, पी. विश्वनाथ जगदलपुर, श्रीमती रजनी साहू मुबई, श्रीमती वंदना सहाय नागपुर, श्रीमती माधुरी राउलकर नागपुर, श्रीमती रीमा चढ्ढा नागपुर, अरविन्द अवस्थी मिर्जापुर, देव भंडारी दार्जीलिंग, जगदीशचंद्र शर्मा घोड़ाखाल नैनीताल, श्रीमती विभा रश्मि जयपुर, नुपूर शर्मा भोपाल, मो.जिलानी चंद्रपुर, डॉ.अशफॉक अहमद नागपुर, रमेश यादव मुंबई श्रीमती सुमन शेखर ठाकुरद्वारा, पालमपुर हि.प्र., श्रीमती प्रीति प्रवीण खरे भोपाल, डॉ. सूरज प्रकाश अष्ठाना भोपाल, डी.पी.सिंह रायपुर, प्राचार्य दंतेश्वरी महाविद्यालय दंतेवाडा, रोशन वर्मा कांकेर, मनोज गुप्ता रायपुर, श्रीमती कमलेश चौरसिया नागपुर, डॉ. कौशलेन्द्र जगदलपुर, पूनम विश्वकर्मा बीजापुर, अमृत कुमार पोर्ते, जगदलपुर, अविनाश ब्यौहार जबलपुर, धनेश यादव, नारायणपुर, कृष्णचंद्र महादेविया, केशरीलाल वर्मा, बचेली, संदीप सेठिया तोकापाल, श्रीमती हितप्रीता ठाकुर, परचनपाल, गोपाल पोयाम, पंण्डरीपानी, श्रीमती खुदेजा खान, जगदलपुर, श्रीमती वीना जमुआर पूना, श्रीमती रजनी त्रिवेदी, जगदलपुर श्रीमती मेहरून्निसा परवेज़, भोपाल, धरणीधर, डिमरापाल, चंद्रकांति देवांगन, जगदलपुर, श्रीमती तनुश्री महांती जगदलपुर, चंद्रमोहन किस्कू झारखण्ड, डॉ उषा शुक्ला जगदलपुर, चमेली कुर्रे जगदलपुर, क्षत्रसाल साहू दुर्गापुर, गौतम कुमार कुण्डू जगदलपुर, रीना जैन जगदलपुर, अलका पाण्डे भानपुरी, प्रहलाद श्रीमाली, चेन्नई मिथिलेश अवस्थी नागपुर, उमेश मण्डावी कोण्डागांव, त्रिलोक महावर अम्बिकापुर, पूर्णिमा विश्वकर्मा, नासिक,बालकृष्ण गुरू खैरागढ़, डॉ धुंडीराज, कोल्हापुर, पृथ्वीराज टाटिया जगदलपुर, संदीप नगराले पुणे, लक्ष्मीसिंह जगदलपुर, रमेश जैन राही डोंगरगांव

बस्तर पाति का कवर पेज एवं भीतर के चित्र–
श्री नरसिंह महान्ती

स्व. श्री नरसिंह महान्ती बस्तर क्षेत्र के वो कलाकार हैं जो नाम से दूर चुपचाप अपना सृजन कर रहे थे। इनका सृजन बस्तर के जनजीवन के साथ ही साथ बस्तर का प्राकृतिक सौन्दर्य भी समेटे हुये है।

अपनी तुलिका से कुछ ही पलों में सौन्दर्य गढ़ लेते थे। किसी भी दृश्य की बारीक से बारीक विशेषता इनकी दृष्टि से बची नहीं रह पाती थी। मुख्यतः वाटर कलर के उपयोग से जीवंत दृश्य उकेरने वाले महान्तीजी पानी के दृश्य यूं उभारते थे कि समझना मुश्किल हो जाता है कि पानी का चित्र है अथवा पानी ही है। पेन्सिल के प्रयोग से ब्लैक एण्ड व्हाइट रेखाओं द्वारा बनाये चित्रों की छटा देखते ही बनती है। इनके बनाये चित्रों की प्रदर्शनी 'आकृति' में लग चुकी है और ***बस्तर पाति*** परिवार भी प्रदर्शनी लगा चुका है। जिसमें शहर के लोगों को उनका छिपा खजाना देखने को मिल चुका है। इनके बनाये चित्र स्थानीय पत्रिकाओं एवं अखबारों में लगातार आते रहते हैं। कई साहित्यिक संग्रहों के मुखपृष्ठ आपके बनाये चित्रों से शोभित हैं।

अंतिम पन्ना फोटोग्राफर के लिए–
श्री सुनील खेडुलकर

''बस्तर पाति'' कला को समर्पित है। अंतिम रंगीन पन्ना फोटोग्राफर के लिए ही आरक्षित कर दिया गया है। इस अंक के फोटोग्राफर हैं श्री सुनील खेडुलकर!

जिला सहकारी बैंक के शाखा प्रबंधक, बैडमिंटन के उम्दा खिलाड़ी, हंसमुख, मिलनसार और बारीक दृष्टि के स्वामी। उनके खींचे हुए फोटोग्राफों में प्राकृतिक सौन्दर्य तो रहता ही है साथ ही प्रकृति के रहस्य भी खोजने का प्रयत्न भी दृष्टिगोचर होता है। सामाजिक विसंगतियां, सांस्कृतिक धरोहर कुछ भी नहीं छिप पाता है इनकी ऊर्जावान नजरों से। सरल स्वाभावी खेडुलकर जी के बारे में जब बस्तर पाति को पता चला तो पहले ही संपर्क में उन्होंने ढ़ेरों फोटोग्राफ दे दिये। उन गहराई लिए फोटोग्राफों का अवलोकन हम सब मिलकर समय–समय पर करेंगे और उनके दृष्टिकोण से दुनिया को देखने, समझने का प्रयास करेंगे।